गया था। द्रव्याभाव से आगे का काम रुक गया होगा किन्तु श्रीजी को पधराकर सेवा का कार्य आरंभ हो सके इस दृष्टि से श्रीवल्लभाचार्य ने १५६८ में श्रीनाथजी को उक्त मंदिर में विराजमान कर दिया था। अतः सं. १५६७ में सूरदास शरण आये तब उन्हें श्रीनाथजी के कीर्तन-गान की सेवा में नियुक्त किया गया। श्री श्रीवल्लभाचार्यजी के द्वितीय पुत्र श्रीमद्‌विट्ठलनाथजी का जन्म सं. १५७२ में हुआ था। उस समय सूरदास ने जन्मोत्सव की बधाई का पद-गान किया यह सुप्रसिद्ध है। अतः सूरदास का शरण संवत् १५६७ ही स्पष्ट होता है। *

सूरदासजी ने ऋतु-ऋतु के, उत्सवों के, त्यौहारों के और नित्य क्रम के समय-समय के, तथा विनय, दीनता, विरहादि भक्ति गान को समयानुकूल रागों में एवं विभिन्न तालों में सहस्रावधि पदों के गान द्वारा भगवान् को रिझाकर अपना जीवन धन्य बनाया।

सूर सूरस्वामी से अब सूरदास बन चुके थे। श्रीमदाचार्यचरण जैसे महान् गुरु की कृपा से सूर के हृदय में श्रीमद्‌भागवत एवं सुबोधिनीजी की समस्त लीला का अनुभव होने लगा। सुबोधिनीजी में मंगलाचरण की प्रथम कारिका” **नमामि हृदये शेषे लीलीक्षीराब्धिशायिनं लक्ष्मीसहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम्**” है। इस मंगलाचरण को सुनते ही तदभावानुसार सूर ने “**राग-बिलावल**” में “**चकवीरी चलु चरनसरोवर** × × × **जहाँ श्री सहस्त्र सहित नित क्रीड़त सोभित “सूरजदास**” यह पद सुनाया। यह सुनकर श्री आचार्यजी बहुत प्रसन्न हुए। सुबोधिनीजी की लीला का ज्ञान सूर के मन में स्फुरित हो चुका है, ऐसा जानकर श्री आचार्यजी ने नन्दालय की लीला के कीर्तन गाने की आज्ञा की। तब सूर ने राग-देवगंधार में “**ब्रज भयो महरि कें पूत**” इस बड़ी बधाई का गान किया। यही बड़ी बधाई आज भी पुष्टि-सम्प्रदाय के प्रत्येक मंदिर एवं हवेली में जन्माष्टमी के दिन प्रातः पंचामृत के समय तथा रात्रि को जन्म-समय राग देवगंधार में ही गाने की प्रणाली है।

तत्पश्चात् श्रीमदाचार्य प्रभु गोकुल होकर सर्व सेवकों सहित श्री गोवर्धन पधारे। श्रीनाथजी के दर्शन किये। तब सूरदासजी को भी दर्शन करके कीर्तन गाने की आज्ञा दी। तब सूर ने **राग-धनाश्री** में “**अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल**” **सूरदास की सबै अविद्या दूर करहु नंदलाल ॥**

यह पद सुन कर श्री आचार्यजी ने कहा कि “सूरदास! तिहारी अविद्या तो प्रथम ही श्रीनाथजी ने दूरि कीनी है। तासों अब तुम भगवल्लीला गावो जामें माहात्म्यपूर्वक स्नेह होय।” †

---

* श्रीनाथजी की प्रागट्य वार्ता में सूरदास का शरण-समय सं १५७७ माना है।

† प्राचीन वार्ता रहस्य–द्वितीय भाग पृष्ठ–१७

सायं सेवा का समय था। अतः संध्या समय के मुख्य **राग "गोरी"** में आदेशानुसार सूर ने भाव-युक्त पद-गान किया—

"कौन सुकृत इन व्रजदासिन को वदत विरंचि शिव शेष"

पुष्टिमार्ग के भावानुसार यह पद सुनकें श्रीमदाचार्यप्रभु अति प्रसन्न भये और ताहि समय आज्ञा करी जो "सूर तुमकों पुष्टि मार्ग को सिद्धांत फलित भयो है, तासों अब तुम श्रीगोवर्धनधर के यहाँ समय-समय के कीर्तन करो।"*

तत्पश्चात् सूर ने शयनान्तर राग–"बिहागरा" में मान एवं पौढ़ने के कीर्तन किये।

ऐसी मान्यता है कि सूरदासजी ने सवालक्ष पदों का गान किया था। इनके सवालक्ष पदों के संग्रह का नाम "सूरसागर" था। परन्तु इन सवालक्ष पदों में से बहुत सा पद-साहित्य विधर्मियों के शासन काल में नष्ट हो जाने की मान्यता सुप्रसिद्ध है। फिर भी आज लगभग दश-सहस्र पदों का विपुल साहित्य प्राप्त है। जिनमें से अधिकतर पद "सूर-सागर" ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुके हैं। सूर के भक्ति पद इतने व्यापक हो चुके हैं कि द्रुपद-गायक द्रुपद शैली में, ख्याल-गायक ख्यालों के ढंग में, भजनिक भजन की धुनों में, यही नहीं, ठुमरी-गायक ठुमरी की बंदिश में भी उनके पदों को अपनी पसंद के अनुसार गायन करते हैं। वास्तव में सूर की पद-रचनाएँ द्रुपद शैली की है जो अष्टछाप परंपरा में दिखाई देती है।

सूर-सारावली में सूरदास ने ६ राग और ३६ रगिनियों का उल्लेख किया है। उन्हीं के मतानुसार मुख्य ६ राग निम्न प्रकार प्राप्त होते हैं—

१. श्री, २. बसंत, ३. भैरव, ४. पंचम, ५. मेघ, ६. नट। रागिनियों का विवरण राग-संख्या प्रकरण में किया जायेगा।

श्रीवल्लभाचार्यजी की शरण आने के पूर्व सूर की विशेष पसंद के मुख्य **१. धनाश्री, २. बिलावल, ३. देवगंधार, ४. गौरी और ५. बिहागरा**, पाँच राग थे। उन्होंने शरण आते ही इन पाँचों रागों में श्री वल्लभाचार्यजी को पद-गान सुनाया था। यह हम पहिले देख चुके हैं सूरदासजी के गाये हुए रागों की संख्या का ठीक निर्णय अभी नहीं हो सका है किन्तु सम्प्रदाय के प्राचीन संग्रहों में एवं प्रकाशित संग्रहों में अधिक से अधिक ८४ रागों की संख्या का उल्लेख प्राप्त होता है। "सूर-मल्हार" राग सूरदासजी ने स्वयं संयोजित किया है। तालों में–**आदिताल, त्रिताल, सूलताल, मत्तताल, यतिताल, अठताल, चौताल, धमार, झप** इत्यादि द्रुपद अंग के तालों का ही विशेषतः प्रयोग किया है तथापि आजकल लोक-समाज में और ग्रामजीवन में उनके पद-भजन को

---

* *प्राचीन वार्ता रहस्य–द्वितीय भाग पृष्ठ–१९*

दादरा, कहरवा, हींच इत्यादि तालों में और मनमाने रागों की धुनों में गा कर सूर की लोकप्रियता और गौरव की याद दिलाते रहते हैं।

सूर और अकबर बादशाह के मिलाप के प्रसंग में लिखा है कि तानसेन ने **"यह सब जानों भक्त के लच्छन"** यह पद **"नट" राग** में बादशाह को सुनाया और इस पद के रचयिता कवि-गायक सूरदासजी व्रज में रहते हैं, यह परिचय भी दिया । देशाधिपति ने सूर से मिलने की इच्छा प्रकट की । उस समय सूर का मुकाम मथुरा में ही था। सम्मानपूर्वक सूर को बुलाया और विष्णु पद सुनाने को कहा । उस समय सूर ने **"मनारे कर माधो सों प्रीत"** यह पद **बिलावल राग** में सुनाया। बादशाह प्रसन्न हुआ किन्तु परीक्षा के हेतु उसने सूर से अपना यशोगान सुनाकर इच्छानुसार द्रव्यादि मांगने को कहा । सूर ने शीघ्र ही **"नाहिन रह्यो–मन में ठौर"** यह पद सुनाया। पश्चात् बादशाह ने दो चार ग्राम और द्रव्य देने का हुकुम किया किन्तु लोभ-लालच से परे निस्पृह भक्त सूर ने कुछ भी लेने से इन्कार कर निडरता से कह दिया कि भविष्य में मुझे बुलवाने का कष्ट न करें।

सूर की काव्य-रचना पर बादशाह मुग्ध था। अतः सूर की पद-रचना को प्राप्त करने के लिए हुकुम दिया कि सूरदास के एक पद लाने पर एक मोहर दी जायेगी। मोहर के लालच से अन्य कवि भी "सूर" की छाप लगाकर पद रचकर लाने लगे। बादशाह बुद्धिमान था। सूर के पद-रचना के मर्म की उसे पहिचान थी। एक दिन पं. कवीश्वर को बादशाह ने कहा कि यह सूर का पद नहीं है। कवीश्वर ने कहा कि सूर का ही पद है। उसी समय बादशाह ने सूरदासजी की मूल रचना का एक पद कागज पर लिखा हुआ मंगवाया और कवीश्वर जो लिख लाया था वह भी ले लिया और दोनों कागजों को ले कर जल में डालकर कहा, –"ओ ख़ुदा! जिसमें सांच हो उसका सच्चा न्याय करो!" पंडित का काग़ज जल में डूब गया और जिसमें सूर का पद था वह काग़ज तैरने लगा। तत्पश्चात् नकली पद लाने वाले लज्जित होकर चल दिये।

सूर की पद रचना के संबंध में कहा जाता है कि संगीत सम्राट तानसेन ने एक मनुष्य को तड़फते हुए देख कर ठीक ही कहा था––

"किधों सूर को सर लग्यो, किधों सूर की पीर ।
किधों सूर को पद लग्यो, तातें धुनत सरीर ।।"

सूरदास के पदों में प्रायः सभी रसों की झाँकी है किन्तु प्रधान शृंगार, शांत, अद्भुत, हास्य रस हैं।

साम्प्रदायिक दृष्टि से माना जाता है कि मर्यादा की दृष्टि से नवधा भक्ति में कीर्तन भक्ति जो नारदजी को और श्रीशुक मुनि को सिद्ध हुई थी वह पुष्टि-दृष्टि से सूरदासजी को सिद्ध हुई। सारस्वत कल्प में श्री कृष्ण भगवान के अष्ट सखाओं में "सूर" "कृष्ण" नामक सखा थे। सम्प्रदाय के मुख्य अष्ट स्वरूपों में "श्रीमथुरानाथजी" के स्वरूप में तथा अष्ट दर्शन में "उत्थापन" के दर्शन में, एवं श्रृंगार में "पाग" के श्रृंगार और वर्ण में चंपाई रंग में सूर की आसक्ति मानी जाती है। श्रीअंग के स्थान में "मुखारविंद" कुंज निकुंजों में" नीलम कुंज" लीला में "मानलीला", मनोरथ में "सघनकंदरा" तथा ऋतुओं में "वर्षाऋतु" के प्रति सूर को अधिक अनुराग था।

सूरदास के पद-संगीत की छाया निम्नलिखित महानुभावों के पद-संगीत में महदंश में दिखाई देती है फिर भी यह मान्यता अनुसंधान की दृष्टि से विचारणीय है:—

१. तानसेन, २. जगन्नाथ कविराय, ३. हरिनारायणजी, ४. मुरारीदासजी, ५. मुकुन्ददासजी, ६. जनभगवान, ७. कृष्णजीवन लच्छीरामजी, ८. अलीखान।

भक्त संगीताचार्य-कीर्तनकार

श्री कृष्णदासजी

श्री कृष्णदासजी का जन्म सं. १५५३ (ई.स० १४९७) में गुजरात के (अहमदाबाद जिले के) चिलोतरा (चलोडा) नामक ग्राम में कुनबी (पटेल) जाति में हुआ था। इनके पिता ग्राम के मुखी (मुखिया) थे। ये बाल्यकाल से ही सत्य, सत्संग और कथा वार्ता के प्रेमी थे। उनके पिता धनलोलुप होने से असत्याचरण और अन्याय से धनोपार्जनकर्ता होने के कारण पिता से अरुचि, वैमनस्य और क्लेश बढ़ जाने पर १३ वर्ष की अल्प आयु में ही गृह त्याग कर निकल पड़े और तीर्थयात्रा करते हुए ब्रज में आये। १५६७ के लगभग श्री वल्लभाचार्य से मथुरा के विश्राम घाट पर दीक्षा ग्रहण की।* आरंभिक शिक्षा अपने जन्म स्थान में प्राप्त की होगी किन्तु व्रजभाषा, काव्य एवं संगीत का ज्ञान श्री कुंभनदासजी, श्री सूरदास जी, श्री परमानंददासजी एवं पुष्टिमार्ग के अन्य विद्वानों के सत्संग से हुआ होगा तदुपरान्त हिसाब-किताब और कार्य-व्यवहार में कुशल होने के कारण श्री वल्लभाचार्यजी ने पहले उन्हें श्रीनाथजी की भेंट एकत्रित करने के लिए भेंटिया का कार्य सौंप दिया। इन कार्यों के लिये अन्य प्रदेशों में उनका प्रवास बार-बार होता रहता था। उस समय उन प्रदेशों के भक्त, कवि, संगीतज्ञ और विद्वानों के भी सम्पर्क में आप आया करते थे। अतः सम्प्रदाय के एवं सम्प्रदायेतर कलाकारों तथा विद्वानों से काफी परिचय होने के कारण काव्य-संगीत में निपुणता प्राप्त कर ली। धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन, अभ्यास एवं सत्संग से साम्प्रदायिक सिद्धान्त तथा सेवाविधि के पूर्ण ज्ञाता भी बन चुके थे। यही नहीं अष्टछाप के कवियों एवं विद्वानों के प्रेरक होने की योग्यता भी इन्हें प्राप्त हो चुकी थी।

नाभाजी कृत भक्तमाल में कृष्णदास नाम के अन्य कवियों का भी उल्लेख है किन्तु छप्पय संख्या ८१ में दिये हुये वृतान्त से ज्ञात होता है कि वह अष्टछाप के कृष्णदास का ही है । 'कृष्णदास की वार्ता' प्रसंग से ज्ञात होता है कि भेंट लेने के लिये कृष्णदास द्वारिका तक गये थे। वहाँ से लौटते समय मार्ग में मीराबाई का ग्राम आया। मीराबाई के घर गये, वहाँ संत, महंत आदि अनेक स्वामी-साधुओं का मिलाप हुआ। मीराबाई ११ मोहरें श्रीनाथजी को भेंट में देने लगीं परन्तु कृष्णदास ने अस्वीकार किया। इस प्रकार मीराबाई से भेंट का उल्लेख प्राप्त होता

** श्री हरिरायजी कृत भावप्रकाश के अनुसार गोवर्धन में श्रीजी के सम्मुख दीक्षा दी गई थी।*

है। 'वार्ता-प्रसंग' में श्री आचार्यजी के द्वारा कृष्णदास को श्रीगोवर्धननाथजी के मंदिर के अधिकारी बनाने का उल्लेख किया गया है।* तथापि बंगाली पुजारी उनका अनुशासन न मान कर मनमानी करते थे। महाप्रभु श्री वल्लभाचार्यजी और गोपीनाथजी के समय तक व्यवस्था इसी प्रकार चलती रही। श्री विट्ठलनाथजी से मिलकर कृष्णदास ने बंगालियों को श्रीनाथजी की सेवा से हटा दिया। किन्तु इस कार्य के लिए बहुत संघर्ष करना पड़ा। राजा टोडरमल और बीरबल की सहायता लेनी पड़ी। इस घटना से कृष्णदास का प्रभाव बहुत बढ़ गया और वे मंदिर की सुव्यवस्था में लग गये फलतः श्रीनाथजी की सेवा राजसी ठाठ से होने लगी।

कृष्णदास जी की काव्य, भक्ति और संगीत की पारंगतता से प्रसन्न होकर श्री विट्ठलनाथजी (श्री गुसाँईजी) ने अष्टछाप मंडली में श्रीकृष्णदास को चतुर्थ स्थान देकर सम्मानित किया। "पाछे कृष्णदास श्री गुसाँईजी और श्री गोवर्धननाथजी को साष्टांग दंडवत् करिके अधिकार की सारी सेवा करन लागे। ता दिन तें श्रीनाथजी के अधिकार की गादी बिछवे लगी। श्री गुसाँईजी की आज्ञा लें कृष्णदास गादी ऊपर बैठते।" (वार्ता रहस्य भा. २ पृ. १९७) आज भी इस गादी पर बैठने का सौभाग्य महाराज श्री तिलकायत की आज्ञा से ही प्राप्त होता है। उन्हीं के नाम से 'श्री कृष्ण भंडार' चला आ रहा है, यही नहीं **नामा** इत्यादि में भी गुजराती भाषा का प्रयोग किया जाता है।

"या भाँति सों कृष्णदास को वैभवभारी और हुकमभारी । सो जहाँ चलें तहाँ रथ, घोड़ा, ऊँट, गाड़ी, सौ-पचास मनुष्य संग। सो कृष्णदास अधिकारी सब देसन में प्रसिद्ध भये"

"सो कृष्णदास नित्य नये पद करिके श्री गोवर्धनधरको सुनावते" (वार्ता रहस्य. पृ. २०२)

कृष्णदासजी ठाठ-बाट और रिसाला के साथ प्रदेश जाया करते थे और जब निज-स्थान पर रहते तब श्रीजी को नित्य नये नये पदों का गान सुनाते थे। मंदिर के कार्यार्थ वे एक बार आगरा गये थे। वहाँ एक नर्तकी को गायन और नृत्य करते हुए देखा। वे उसकी कला पर मुग्ध हो गये और उसको श्रीनाथजी के सम्मुख नृत्य-गान के लिए अपने साथ गोवर्धन लाये। इस घटना का वार्ताप्रसंग में निम्न प्रकार उल्लेख प्राप्त होता है:—

"सो गान नृत्य सुनि के मन में विचारे जो यह तो अति उत्तम है, और दैवी जीव है, सो श्री गोवर्धनधर के लायक है"

---

* *आज भी श्रीनाथजी के मंदिर के भंडार का नाम इन्हीं के नाम पर 'श्रीकृष्ण भंडार' और पत्र व्यवहारादि मंदिर की व्यवस्था-व्यवहार आज तक 'अधिकारी कृष्णदास' के नाम से चल रहा है।*

"सो कृष्णदास बहोत प्रसन्न भये तव वाकों रुपैया १००) सौ दिये। और कहे जो तेरो रूप, गान, नृत्य सब आछे हैं। सकारे हम श्रीगोवर्धन जायगें, हमारो सेठ नो उहां है, तेरो मन होय तो चलियो। तब वानें कही जो हमको तो यही चहिए। मन में प्रसन्न भई जो ये इतने रुपैया दिये तो सेठ न जाने कहा देयगो?" "तब वानें घर आयकें गायबे को साज सब आछे बनाय गाड़ी ऊपर धरि राख्यो । सवारे कृष्णदास के पास आई। पाछें कृष्णदास वा वेश्या (नर्तकी) को ले चले। दूसरे दिन मध्यान्ह समय 'गोपालपुर' में आये। पाछे वा वेश्या को न्हवाय के नवीन वस्त्र पहरवे को दियो। तब कृष्णदास अपने मन में विचारे, जो यह ख्याल-टप्पा गायगी सो श्रीगोवर्धनधर सुनेंगे। तासों मैं याकों एक पद सिखाऊँ। तब वाको एक पद सिखायो और कह्यो जो ये पद तू 'पूरवी" राग में गाइयो। पाछें भोग के दर्शन के समय वाको परबत ऊपर ले गये, भोग के दर्शन के किवाड़ खुले। तब वा वेस्या ने पहले नृत्य कियो, पाछें गान करन लागी, कृष्णदास ने पद सिखायो हतो सो गायो—

"मेरो मन गिरिधर छबि पर अटक्यौ।
ललित त्रिभंगी अंगनि ऊपर चलि, गयौ तहाँई ठठक्यौ।।
सजल स्यामघन नील बरन है फिरि चित अनत न भटक्यौ।
'कृष्णदास' कियो प्रान न्यौछावर यह तन जग सिर पटक्यौ।।

सो गावत-गावत छेली तुक आई तब वा नर्तकी की देह छूटि गई, सो दिव्य देह होय लीला में प्राप्त भई।

(प्राचीन वार्ता रहस्य भा.२. पृ. २११-१२)

"पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धांतानुसार आदर्श भक्त वही है जो अपना सर्वस्व भगवान के चरणों में समर्पित कर दे। कृष्णदास जैसे अनन्य सेवक के पास तो कोई भी ऐसी वस्तु नहीं हो सकती जो श्रीनाथजी को समर्पित न हो। उन्होंने सरल भाव से उस वेश्या को भी श्रीनाथजी को अर्पित कर दिया, ताकि वह सदैव उनकी नृत्य-गान की सेवा करती रहे।" (अष्टछाप परिचय पृ. २२४)

उपर्युक्त उल्लेखों से ज्ञात होता है कि कृष्णदासजी केवल गायनाचार्य ही नहीं किन्तु वाद्य और नृत्य के भी ज्ञाता और मर्मज्ञ थे। संगीत के तीनों अंग-गायन, वादन और नर्तन में उनका अनुराग था इसीलिए उनके अधिकतर पदों में रासलीला की भावना दिखाई देती है। इनके पदों में गायन के वाद्यों के एवं नृत्य के पारिभाषिक शब्दों के उल्लेख प्रचुर मात्रा में प्राप्त होते हैं।

ख्याल, टप्पा तथा द्रुपद, धमारादि प्रबन्ध गान के विविध भेदों के मर्मज्ञ होने के कारण उन्होंने ख्याल-टप्पा के गान में प्रवीण नर्तकी को राग पूर्वी (धमार) में नवीन पद बना कर कर सिखाया और उसी को श्रीजी के सम्मुख गाने के लिए कहा

गया। इस घटना से स्पष्ट होता है कि सम्प्रदाय में श्रीजी के सम्मुख द्रुपद धमारादि प्रबन्ध-गान के अतिरिक्त ख्याल—टप्पादि का गायन करना उस समय से प्रतिबंधित माना जाता है। इस मर्यादानुसार पुष्टिमार्गीय संगीत में कीर्तनों की गान-शैली द्रुपद-धमार पद्धति की अभी तक प्रचलित है। यदि आज का कोई कलाकार या कीर्तनकार सम्प्रदाय के पदों को आधुनिक ख्याल -ठुमरी पद्धति में गायन करता हुआ दिखाई देता हो तो यह कृत्य सम्प्रदाय की परंपरा शैली के विरुद्ध मानना चाहिए।

कृष्णदासजी के अधिकार-समय में ही श्री विट्ठलनाथजी ने श्रीनाथजी की सेवा का वैभव बढ़ाया और सेवा राजसी ठाठ से होने लगी। मंदिर के विभिन्न कार्यों के लिए बहुत से कर्मचारी नियत किये गये। मंदिर के भीतर की नित्य सेवा के मुखिया, भीतरिया, कीर्तनिया, पखावजी इत्यादि तथा बाहर की सेवा में रोकड़िया, भंडारी, भेंटिया, समाधानी, दरजी, सुनार तथा गायों की सेवा में ग्वालादि सेवक नियुक्त किये गये। उनके नेग-बंधान का प्रबन्ध भी किया गया, जिनमें पखावजी की नियुक्ति के संबंध में वार्ता प्रसंग ३ में निम्नलिखित उल्लेख प्राप्त होता है—

"जब श्री गोवर्धननाथजी को वैभव बढ़्यो तब कृष्णदास के मन में आई जो मृदंगी चाहिए। तब श्री गोवर्धनधर कहे जो गोकुल में स्याम कुम्हार है सो मृदंग आछी बजावत है। ताको श्री गुसांइजी को कहिकै यहाँ राखो। कृष्णदास ने श्री गुसांईजीसों कह्यो जो प्रभुन की यह इच्छा है। तब श्री गुसांईजी आपु स्यामकुंहार को गोकुल तें बुलाय कें श्रीनाथजी की सेवा में राखे"। (भावप्रकाश)

"तब कृष्णदास जी ने स्यामकुम्हार को बुलाय के कह्यो जो श्री गोवर्धननाथजी की इच्छा आजु परासोली में रास करबेकी है, सो मृदंग ले आवो। तब स्यामकुम्हार ने कह्यो जो मोहू को भी आज्ञा दीनी है, तासों मृदंग ले के आया हूँ। सो जब सेन आरती होय चुकी तब वे परासोली में चंद्र सरोवर है तहां आये। देखें तो श्रीगोवरधनधर और स्वामिनी जी सगरी सखीन सहित विराजे हैं। तब श्री गोवर्धनधर ने श्यामकुम्हार सों कही जो--तू तो मृदंग बजाव और कृष्णदास सों कह्यो जो-तू कीर्तन गाव। सो चैत्र सुद पून्यो के दिन रात्रि प्रहर डेढ़ गई, उजियारी फैल गई, अलौकिक रात्रि भई। तब श्यामकुम्हार ने मृदंग बजाओ।* श्री गोवर्धनधर श्री स्वामिनीजी सहित नृत्य करन लागे। ता समय कृष्णदास ने यह पद गायो सो पद राग केदारो—-

१. 'श्रीवृषभानु-नंदिनी नाचति लाल गिरिधर संग,
लाग डाट उरप तिरप रास रंग राच्यो।
झपतालहिं मिल्यौ राग केदारो सप्त सुरनि,
अवघर वर सुघर तान, गान, रंग राच्यो ।।१।।

---

* वार्ता रहस्य प्रसंग ३ पृष्ठ २०३ से २०५

पाई सुख सुरति सिद्धि, भरत काव्य विविध रिद्धि,
अभिनय दर्शित सुहाग हुलास रंग-राच्यौ ।।

वनिता सतयूथप पिय, निरखि थक्यौ सघन चंद,
बलिहारी 'कृष्णदास' सुजस--रंग--राच्यौ ।।२।।

"यह पद सुनि के श्रीगोवर्धनधर प्रसन्न होय के अपने श्री कंठ की प्रसादी कुंद-कुसुमन की माला दीनी। कृष्णदास अपनो परम भाग्य माने, सो रोम रोम में आनंद भरि गयो, तब इसमें मगन होयके यह पद गायो। राग-मालव—

२. **"अलाग लागनि उरप तिरप गति, नटवत ब्रजललना रासे ।।**
उघटत शब्द ततथेई ताथेई, मृगनैनी ईषद् हासे ।।१।।
चापल (चाली) छंद जानावति गावति बांधति मदन भौंह पासे ।।
अवघर तान मान बंधान सों, मोहति विस्व चरन-न्यासे ।।२।।

नूपुर रुनित क्वनित मनि-मेखला, कटि-तट काछनी नील सुवासे
चलत उरज-पट किंकिनी कुंडल, श्रमजल-कन सोभित आसे ।।
मोहनलाल गोवर्धनधारी, रिझवत छैल सुघर लासे ।।
अपने कंठ की श्रमजल-दल की, माला देति 'कृष्णदासे' ।।४।।

३. **'ततथेई रास मंडल बनि नाचत, पियके संग प्रीतम प्यारी ।।"**

४. **चंद गोविंद गोपी तारागन, वन्यो है रास में बनवारी ।।"**

इस प्रकार कृष्णदासजी ने रास के पद-गान द्वारा स्वयं श्रीनाथजी एवं श्री स्वामिनीजी को रास-लीला में निमग्न किया। सूर, कुंभन और परमानंद के समान श्री कृष्णदासजी की वाणी भी भावप्रधान है, किन्तु संगीत विषयक प्रधानता सूर में अधिक दिखाई देती है। प्राचीन-रागिनी परिवार व्यवस्था की ६ राग और ३० रागिनियों तथा ६ राग और ३६ रागिनियों की शास्त्रीय मान्यता में अष्टछाप के सूर, परमानन्द और कृष्णदास के अतिरिक्त ५ सखाओं ने ६ राग और ३०, रागिनियों को तथा सूर, परमानन्द और कृष्णदास ने ६ राग और ३६ रागिनियों को प्राधान्य दिया है। सूर और कृष्णदास ने अपने उत्तर काल में इनसे अधिक रागों में भी गान किया है।

कृष्णदासजी के पदों में इन रागों का उल्लेख प्राप्त होता है–(१) भैरव, (२) रामकली, (३) ललित, (४) मालकौंस, (५) खट, (६) रामग्री, (७) देवगंधार, (८) विभास, (९) हिंडोल, (१०) वसंत, (११) पंचम, (१२) विलावल, (१३) सूहा (१४) गुर्जरी, (१५) टोडी, (१६) धनाश्री, (१७) आसावरी, (१८)सारंग, (१९),

---

१, २, ३, ४ सम्प्रदाय की प्रणाली में ये सभी पद शरद् पूर्णिमा को रास के दर्शन समय गाये जाते हैं।

सोरठ, (२०) मेघमलार, (२१) मलार, (२३) नट नारायण, (२३) मालव गौड, (३४) नट, (२५) गौरी, (२६) मालव, (२७) पूर्वी, (२८) श्री, (२९) मारू, (३०) काफी, (३१) ईमन, (३२) कल्याण, (३३) हमीर, (३४) केदारो, (३५) कान्हरो, (३६) सुघराई, (३७) नायकी (३८) अड़ाना, (३९) जैजैवंती, (४०) रायसा, (४१) विहाग, (४२) विहागरो ।†

तदुपरांत–खमाच, चैती-गौरी सोरठ-मलार ईमन-कल्याण, स्याम-कल्याण के भी उल्लेख पाये जाते हैं; जो इनके उत्तरकाल में गाये हुए होंगे।

संगीत की शास्त्रीय व्याख्यानुसार कृष्णदास जी ने गायन, वादन और नर्तन, इन तीनों कलाओं का विनियोग भगवल्लीलामय कीर्तन गान में किया है उसके कुछ उदाहरणों का उल्लेख यहाँ उपयुक्त होगा–

(१) गायन के अंतर्गत गान और राग–गान के बड़ी संख्या में पद प्राप्त होते हैं। जैसे (अ) गान–संबंधी:––

(१) कमलनयन मिलि गावति राधा सारंग नैनी। (राग–कल्याण)
(२) नव किसोरी नवकिसोर संग मिलि गावै। (राग–कानरो)
(३) राधा प्यारी गावति गोविंदहि रिझावति। (राग–टोडी)
(४) सुधर राधिका मृदु मधुर गावै (राग–सारंग)

(ब) राग–गान

(१) कमलनयन कमनीय मुरलिका, जबहिं, अलापि प्यारी राग **सारंग** ।

(२) नेंकु सुनावहु राग **कानरौ**, बलि बलि बलि मुरली कल गायक, ।

(३) कान, लाग्यौ गिरधर गावै ।
ततथेई ततथेई ततथेई, ततथेई **भैरो** राग मिलि मुरली बजावै ॥

(४) तू गिरिधर नवरंगी ॥
रगमगी **गौरी**–राग अलापति, मिलत मधुर सुर तान तरंगी ॥

(५) सरिगमपधनि स्वर सप्त अलंकृत, **श्रीराग** गावै व्रज-भामिनी ॥

(६) मोहन मूरति मिलहि गोपालै ।
सुनि सुंदरि पिय सुविधि रिझावहि, राग कल्याण सुगति....

(७) मुरली बाजे मधुर रसाल। सुनहि कान दै रसिक राधिके,

---

† इस संबंध में विशेष विवरण 'राग-संख्या' प्रकरण में देखिए 'कृष्णदास' कांकरोली प्रकाशन के आधार पर निर्धारित।

केदार राग रचि रूपक तालें ।।

इस प्रकार अधिकतर 'सारंग' और 'कान्हरा' रागों के पद अधिक दिखाई देते हैं ।

गायन के उपरांत मृदंग, वेणु (बंसी), रवाब, वीणा, मंदिलरा आदि वाद्य-वादन एवं नृत्य के भावात्मक पद-गान के विविध प्रकार भी निम्नलिखित उदाहरणों से देखिए:—

(१) (मृदंग-वादन) **राग—गौड़-मल्हार**

(स्थायी)– बाजत मृदंग उघटित सुधंग तक्कझं तक्कझं
धुमकिटता धुमकिट धुमकिट धिलांग तक ।
(अंतरा)– द्रगदां द्रगदां धिन्न दाना दनन,
रटत झौंस झौं झौंस तक ।।१।।

(संचारी)– मति बादर गरज घन दामिनी लरज,
अलाप लेत खरज होत अनुपम तरज ।।१।।
(आभोग)– 'कृष्णदास' प्रभु पास पूरन भई आस, नृत्य,
करत रस बिलास, थोंदिग् थोंदिग् तक थुंग तक थुंग तक ।।१।।

(ब) राग—ईमन
स्थायी– **बाजै, हो मृदंग, तक धिंधिंताता तिकट**
तिकट धिंधिता थोंदि ताधिलांग ।।
अंतरा– **धिलांग धिलांग तकि तकि धीधीकट धीधीकट**
थुंथुंनाना गिडगिड बाजै, हो मृदंग ।
संचारी– **मात्रा पंच संच प्रथम पदी विस्तार**
मंद्र मंधरु तार को तासें साजे, बाजे, हो मृदंग ।
आभोग– **कहै कवि 'कृष्णदास' इहि विधि लाडिलो लेत तान,**
गिडि गिड धीधी गिड गिड बाजै, हो मृदंग ।।

वाद्य-वादन

वेणु-वादन:–(१) बेनु धर्यो रसिक कुंवर बलबीर
(२) ऐसी बंसी बाजै बन घन में, व्यापि रही धुनि ।
युगल वेणु-वादन:–

(१) सिखवत पियहि बजावन बंसी ।
रूप रासि गुन रासि किसोरी, वाम बाहु धरें प्रति वाम अंसी ।।१।।

(२) अलापति भामिनी लेंति उरप गति नागरि नारी ।
वाही के संग बेनु बजावत, सुघर राइ गिरिधरधारी ।।१।।

रवाब-वादनः–

(१) "पियके आगे बजावति रवाब चूकी री, सुघराई मैं जानी तेरी"
(२) "मन अनत ही डीठि अनत रवाबहि कहा बजावति बैठी ।"

वीणा-वादन:

(१) रिझवत रसिक गोपाल कुँवर को ......
कर बीना लीने गति मिलवति, सुनु नागरि पटताल धरति"

मंदिलरा-वादनः–

(१) धिधितां तांतांतां धित्रां धित्रां मंदिलरा बाजै ।

नृत्य–

(१) नाचत है नागर बलबीर ।

(२) नृत्यमान रास-रंग, कान्ह संग घोख नारि"

नृत्त– (१) नृत्तति सुधंग अंग रंग-संग राधिका"

(२) नृत्तति गोपाल संग राधिका बनी"

(३) निर्तत गावत बजावत"

नाट्य:– (१) "स्याम सजनी सरद रजनी पुलिन मध्य नृत्य नाट्य"
(२) "नाचनि रास में लाल बिहारी । ....
कृष्णदास नट नाट्य सुघर अति, कुसल केलि गोवर्धनधारी"

उपर्युक्त प्रकार के अनेक पदों के गायक 'कृष्णदासजी 'ने अपने कीर्तनों में संगीत (गीत, वाद्य और नृत्य) के अनेक* पारिभाषिक शब्दों का समावेश किया है। तदुपरान्त वाद्यों के भी विविध नामोल्लेख प्राप्त होते हैं । उदाहरण रूप में इनका वसंत खेल का एक निम्नलिखित पद देखिए:–राग-बसंत

---

* *इनके पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख "हवेली संगीत में संगीत के पारिभाषिक शब्द" प्रकरण में किया गया है ।*

"देखौ राधा-माधौ बन-विहार, ...

"तहाँ बाजत ताल मृदंग चंग, बाजै ढफ सहनाई अरु उपंग।
बीन* रवाब किन्नरी की घोर, बिच सिरिमंडल मुरली की रोर ।।
तंबूर सारंगी† सितार संग, खंजरी कठताल ढोलकी रंग ।
अछवट महुवर सुर मिलाई, झांझ झमक बाजै गिने न जाई ।।"

यही नहीं इनके कुछ पदों में राग की जाति और स्वरों का भी उल्लेख किया गया है– जैसे–

"निर्तत आवत गावत बजावत, सासा गग मध मध निध मध ओंडव सुर
राग हिंडोल"

उपर्युक्त प्रकार के संगीतपरक विपुल पदों से श्री कृष्णदास ने अष्टछाप परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है । सम्प्रदाय के नित्य-नैमित्तिक आदि सभी प्रकार के उन्होंने लगभग १२०० पदों का गान किया है । पद गान-संख्या की दृष्टि से सूर और परमानंद के पश्चात् कृष्णदासजी का स्थान सुप्रसिद्ध है । संगीत की दृष्टि से सूर, परमानंद एवं गोविंदस्वामी के समान कृष्णदास को भी संगीताचार्य के रूप में देखना उचित होगा । यद्यपि सम्प्रदाय में सूर, परमानंद और गोविंदस्वामी अष्टमहानुभावों में संगीताचार्य के रूप में विशेष प्रसिद्ध हैं । हमारे मतानुसार कृष्णदासजी के काव्य-संगीत-ज्ञान में इन महानुभावों से कोई विशेष अंतर नहीं था । तथापि इनका प्रसिद्धि से वंचित रहने का एक कारण यह है कि वे तीनों महानुभाव सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व ही संगीतज्ञ एवं गायक के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे : किन्तु कृष्णदासजी दीक्षित होने के पश्चात् सूर, कुंभन और परमानंदजी के सत्संग से तथा पर्यटन में अनेक संगीतज्ञों से परिचय प्राप्त होने पर संगीत के विशेष ज्ञान से सम्पन्न हुए । तदुपरान्त ये अधिकारी के स्थान पर होने से मंदिर की अनेक प्रकार की व्यवस्था में रत होने के कारण अधिकतर दिनभर के कार्यों से निपटकर सायं शयन के दर्शन में ही उपस्थित रहते थे । किसी दिन अवकाश मिलने पर ही 'राजभोग' के दर्शन में उपस्थित रहा करते थे । अतः कीर्तन-संगीत की ख्याति की अपेक्षा निडर शासक, योग्य प्रबंधक, कार्यदक्ष और व्यवहार-कुशल मुख्य अधिकारी पद की ख्याति जीवन पर्यंत अधिकार की सेवा के कारण सम्प्रदाय में अधिकतर प्रसिद्ध होती रही । फलतः संगीताचार्य की दृष्टि गौण बन गई और उन्हें अधिकारी पद की दृष्टि से सम्प्रदाय के विद्वान् देखने लगे ।

पुष्टिमार्गीय भावनानुसार कृष्णदास का लीलात्मक रूप ऋषभ सखा एवं 'ललिता' सखी का माना जाता है। लीलासक्ति में रास-लीला, स्वरूपासक्ति में श्री मदनमोहनजी का स्वरूप, शृंगारासक्ति में मुकुट का शृंगार और दर्शन में 'शयन' के दर्शन में ये अधिक आसक्त थे ।

---

* † *इन वाद्यों का उल्लेख अष्टछाप में केवल कृष्णदासजी ने किया है ।*

संगीताचार्य परमानन्ददासजी

अष्टछाप के भक्त कवि और कीर्तनकार श्री परमानंददास जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनका जन्म सं. १५५० (ई. स. १४९४) की मार्गशीर्ष शु. ७ सोमवार को हुआ था। इनके पिता सामान्य स्थिति के थे। दान पुण्यादि द्वारा जीविका चलाते थे। परिवार में शिष्य-सेवक बनाने की परंपरा थी। यथासमय यज्ञोपवीत संस्कार किया और साहित्य तथा संगीत की शिक्षा दिलाई।

सोलह वर्ष की वय होने पर पिता ने उनका विवाह करने की इच्छा प्रकट की, परन्तु परमानंददास जी ने विवाह करने का तथा विवाह के लिये द्रव्य एकत्रित करने का भी निषेध कर दिया। अनन्तर उनके पिता द्रव्य कमाने के लिये दक्षिण की ओर चले गये। तब परमानंददासजी भगवद्-कीर्तन के लिए समाज एकत्र कर भजन-पूजन और कीर्तन में अपना समय व्यतीत करने लगे; जिससे आपने सूरदास जी के समान स्वल्प समय में ही प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। इनके कई शिष्य भी होने लगे अतः परमानंद जी 'स्वामी' कहलाने लगे। स्वरचित पदों को वे ऐसे मधुर कंठ और उत्तम रीति से गाते थे कि श्रोता गण मुग्ध हो जाते थे। इन शिष्यों की दी हुई भेंट के कारण ये जीविका के संबंध में निश्चिन्त थे। छब्बीस वर्ष की वय तक उनकी जीवनचर्या का यही क्रम बना रहा। सत्संग, कीर्तन और संगीत के अनुरागी होने से ये कभी-कभी आसपास देशाटन करने भी जाया करते थे और कीर्तन-भजन का आयोजन एवं साधु, संतों, ब्राह्मणों की सेवा भी किया करते थे।

आप संवत १५७६ में कुंभ मेले के समय प्रयाग आये और कुछ समय तक वहीं रह गए। प्रयाग में रहकर भी ये भजन-कीर्तन-संगीत का पूर्ववत् प्रचार कर रहे थे; जिसके कारण वहाँ पर भी खूब प्रसिद्ध हो गये। आसपास के अनेक साधु, और भक्त-जन भी उनके कीर्तन का आनंद लेने के लिये एकत्रित हुआ करते थे।

परमानंददासजी के प्रयाग-निवास के समय यमुना के दूसरी ओर अडैल ग्राम में श्रीवल्लभाचार्यजी महाप्रभु का निवास था। प्रयाग में प्रति रात्रि होने वाले भजन कीर्तन-समाज की बात श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के परिकर में भी पहुँच चुकी थी। प्रत्येक एकादशी को रात्रि भर जागरण करते हुए भजन-कीर्तन करने का परमानंदस्वामी का नियम था। श्रीवल्लभाचार्यजी का सेवक कपूर जलघरिया कीर्तन-गान प्रेमी था। ज्येष्ठ शु. ११ की रात्रि को कपूर जलघरिया सेवा के अनंतर

परमानंद स्वामी के भजन-कीर्तन सुनने को अडैल से प्रयाग चल दिया। सायंकाल के पश्चात् यमुना पार करने के लिये कोई नाव नहीं थी किन्तु उसकी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी अतः वह तैर कर यमुना पार गया। परमानंददासजी के समाज में अन्य सेवकों ने उन्हें पहिचान कर आगे बैठाया। तब अड़ैल में श्री महाप्रभुजी की उपस्थिति का परमानंदस्वामी को ज्ञान हुआ।

कीर्तन समाप्त होने पर कपूर क्षत्रिय ने भगवत्स्मरण किया और अडैल जा पहुँचा। इधर जागरण के कारण परमानंद स्वामी की आँखें कुछ झपक गयीं और स्वप्न में उन्हें श्रीवल्लभाचार्य के पास जाने की प्रेरणा हुई। प्रातःकाल होते ही श्रीमहाप्रभुजी के दर्शनार्थ वे अडैल जा पहुँचे। संध्या-वंदनादि के अनंतर उनको महाप्रभुजी ने भगवल्लीला के पद गा कर सुनाने की आज्ञा की। तब उन्होंने विरह का निम्नलिखित पद गाया—

जिय की साध जिय में रही री।

विरह के पद सुनने के बाद श्रीआचार्यजी ने बाललीला के पद गाने का आदेश दिया, परन्तु परमानंददासजी ने प्रभु की बाल-लीला से अनभिज्ञता प्रकट की। तब कपूर क्षत्रिय के कथनानुसार वे स्नान कर श्रीवल्लभाचार्यजी के समीप पहुँचे उन्होंने श्री नवनीतप्रियजी के सम्मुख परमानंददासजी को नाम सुनाकर ब्रह्मसंबंध दीक्षा दी, और बाललीला की स्फूर्ति के लिये श्रीमद्भागवत दशम-स्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई।

बाद में 'परमानंददास' जी ने '**माईरी कमल नैन स्यास–सुन्दर झूलत है पलना**' इस पद का राग आसावरी में गान किया तथा राग-बिलावल में '**जसोदा तेरे भाग की कही न जाइ**' पद गाया। (यह वह आज भी पलना के समय इसी राग में गाया जाता है।) बिलावल में ही '**मनिमय आंगन नंद के खेलत दोऊ भैया**' सुनाया। (यह बाललीला के दिनों में बिलावत में ही गाया जाता है।)

परमानन्ददासजी का पद राग–कान्हरो में '**प्यारे हरि को बिमल जस गावत गोपांगना**' आज भी बधाई के दिनों में गाया जाता है।

इस प्रकार आपने बाललीला-पलना के पद गाये। तब श्री आचार्यजी बहुत प्रसन्न होकर बोले– जो अब समय-समय के पद नित्य नवनीतप्रियजी को सुनायो करो। यह सेवा तुमको दीनी" "सो. परमानंददास नित्य नये पद श्रीनवनीतप्रियजी को सुनावते। अनोसर होय तब श्रीआचार्यजी के आगे व्रजलीला के अनेक कीर्तन करते। श्रीआचार्यजी सुबोधिनी की कथा जा समय जा प्रसंग की सुनावते ताही प्रसंग के कीर्तन कथा भये पीछे सुनावते। (वार्ता प्रसंग–१)

परमानंददासजी ने श्री आचार्यजी सों श्रीठाकुरजी के चरणार्विद को महात्म्य कथा में सुन्यो ता समय तैसोई पद कान्हरा राग में **'चरन कमल वंदों जगदीस'** यह पद गायो (आज भी महात्म्य के चार पदों में यह पद गाया जाता है।)

ता पाछे श्रीआचार्यजी अडैल तें व्रजको पधारे तब परमानंददासजी ने अपने ग्राम कन्नौज में अपने घर पधराये। रसोई करवाई, भोग सराय आपु भोजन कियो। पाछें श्रीआचार्यजी ने कछू भगवद्-जस गायवे की आज्ञा करी। परमानंददास जी ने राग-सोरठ में **'हरि तेरी लीला की सुधि आवै'** गायो यह 'पद सुनते ही श्रीआचार्यजी लीला में मग्न होय गये। जो चौथे दिन सावधान होय के नेत्र खोले, तब सब वैष्णव प्रसन्न भये।

इस प्रकार परमानंददासजी की वार्ता के सभी प्रसंगों में विविध लीलाओं के अनेक पद विविध रागों में गाये हुए प्राप्त होते हैं। परमानंददास कृत पदों में उन्होंने श्रीकृष्ण जन्म से लेकर बाललीला मथुरागमन भ्रमरगीत प्रसंग तक का गायन किया है। तदुपरान्त आपके द्वारा रचित वर्षोत्सव के पद और अनेक स्फुट पद भी मिलते हैं। उनके पदों का संग्रह भी उनके जीवनकाल में ही हो गया था। जो 'परमानंद सागर' के नाम से प्रसिद्ध है जिनका प्रकाशन काँकरोली विद्याविभाग से हो चुका है। इनमें प्राय: २००० पद हैं। इसका संपादान सं. १६४२ से १६८० के बीच की हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर किया हुआ है अत: यह अत्यंत प्रामाणिक है।

अष्टछाप में विविध लीला गायन के कारण यद्यपि सूरदास सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं तथापि किशोरलीला गायन में श्री कुंभनदास और बाललीला गायन के लिए परमानंददासजी की ख्याति है।

द्रुवदास ने आपके पद गायन की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

परमानंद अरु सूर मिलि, गाई सब व्रज-रीति।
भूलि जात विधि भजन की, सुनि गोपिन की प्रीत।।

नाभाजी कृत भक्तमाल में चार परमानंदों के उल्लेख में से एक 'परमानंद सारंग' का विवरण इस प्रकार मिलता है—

पौगंड बाल किसोर, गोप लीला सब गाई।
अचरज कहा यह बात, हुतौ पहिलौ जु सखाई।।
नैननि नीर प्रवाह, रहत रोमांच रैन दिन।
गद–गद गिरा उदार, स्याम सोभा भीज्यौ तन।।
सारंग छाप ताकी भई, स्रवन सुनत आवेस देत।
व्रजवधू–रीति कलिजुग विषै, परमानंद भयो प्रेम केत।।

उपर्युक्त वर्णन अष्टछाप के परमानंददास का ही है। परन्तु 'सारंग छाप' के विषय में कोई स्पष्टीकरण संतोषजनक प्राप्त नहीं होता। 'अष्टछाप-परिचय' में उनकी समालोचना में निम्नलिखित विवरण मिलता है—

"अंतर केवल छाप के संबंध में है। इनके काव्य में 'परमानंद' 'परमानंददास' 'दास परमानंद', 'परमानंद प्रभु' और 'परमानंद स्वामी' की छाप मिलती है, किन्तु 'परमानंद सारंग' की छाप उपलब्ध नहीं होती है।" "भक्तमाल के सारंग शब्द का कोई भी कारण हो किन्तु उसका उपर्युक्त छप्पय अष्टछाप के परमानंद से ही सबंध रखता है"।

डॉ. दीनदयाल गुप्त ने इस संबंध में लिखा है—

"परमानंददासजी के जितने पद उपलब्ध हैं उनमें दो-तीन पदों में ही सारंग शब्द लेखक ने कवि के नाम के साथ देखा है। अन्यथा सारंग शब्द पदों में नहीं आता। इतनी वात अवश्य देखने में आती है कि परमानंददास के आधे से अधिक पद सारंग राग में लिखे हुए हैं"*

डॉ. दीनदयाल जी ने दो-तीन पदों में कवि के नाम के साथ "सारंग" शब्द देखा है। यदि आप उन पदों को प्रस्तुत करते तो ठीक था। अन्यथा १४०० पदों में से दो पदों में किया हुआ 'सारंग' शब्द प्रयोग किसी दूसरे अर्थ में भी हो सकता है? क्या नाभाजी को १४०० में से ये पद ही प्राप्त हुए होंगे? "परमानंददासजी के आधे से अधिक पद 'सारंग' राग में लिखे हुए हैं" यह विधान भी हमें जँचता नहीं है। क्योंकि अधिक प्रमाण में गाये हुये राग नाम के आधार पर कवि की छाप उस राग के नाम की लग जाने का कोई अन्य उदाहरण प्राप्त नहीं होता है। संख्या की दृष्टि से सारंग राग के पदों की संख्या आधे से अधिक नहीं है किन्तु कम अर्थात् ४२ प्रतिशत है।

हमारा मत है कि यहाँ मूल ग्रन्थ में लिखने वाले की या लिखाने वाले की उच्चारण में या सुनने में या लिखने में कुछ गलती मालूम होती है। वास्तव में यह 'सारंग' नहीं 'सागर' शब्द होना चाहिए। परमानंदजी के देहान्त समय जब श्रीगुसाँईजी ने आपको 'सागर' संबोधन किया था तबसे अष्टछाप के परमानंदजी को 'सागर' नाम से ही अधिकतर लोग पहिचानने लगे थे। नाभाजी का भी चार परमानंदों में जाको 'सागर' की छाप प्राप्त भई है, सागर छाप ताकी भई' कहने का हेतु यही होना चाहिए। परमानंददास अपने जीवनकाल में में ही 'सागर' कहलाने लगे थे जिनका उल्लेख "८४ वैष्णवन की वार्ता" में है

---

* *अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ—११३,*

"परन्तु सूरदास और परमानंददास ये दोऊ 'सागर' भये। इन दोउन के कीर्तन की संख्या नांही सो दोऊ 'सागर' कहवाये । (पृष्ठ-४२) "पुष्टिमार्ग में दोइ 'सागर' भये। एक तो सूरदास और दूसरे परमानंददास" (पृष्ठ ५०)

परमानंदजी ने पद-गान में संगीत के जिन पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया है, वे निम्न लिखित है—

(१) राग, नाद, संगीत, अलाप, नृत्य, निर्त, जाति, तत्थेई, उरप, तिरप, हस्त-भेद, इत्यादि ।

वाद्यों के नाम निम्न प्रकार प्राप्त होते हैं:—

अ. बेनु, मुरली, महुवरि, चंग, भेरि,

ब. बीना (बीन), रवाब, श्रीमंडल (सुरमंडल)

क. मृदंग, पखावज, मुरज, रूंज, दमामा, डफ, ढोल, उपंग,

ड. किन्नरी, झालर, झाँझ, दुंदुभी ।

परमानंददासजी ने जिन रागों में कीर्तन गान किया है, उनकी संख्या ४२ प्राप्त होती है, जो निम्न प्रकार है:—*

(१) ललित, (२) मालकोंस, (३) भैरव, (४) रामकली, (५) रामग्री, (६) देवगंधार, (७) विभास, (८) खट, (९) बसंत, (१०) परज, (११) पंचम, (१२) बिलावल, (१३) सूहा, (१४) गुर्जरी, (१५) टोडी, (१६) आसावरी, (१७) धनाश्री, (१८) सामेरी, (१९) सारंग, (२०) सोरठ, (२१) मल्लार, (२२) देसाख, (२३) नट, (२४) गौरी, (२५) मालव, (२६) पूर्वी, (२७) श्री, (२८) जेतश्री, (२९) मालश्री, (३०) मारू, (३१) काफी (३२) हमीर, (३३) ईमन, (३४) कल्याण, (३५) केदारो (३६) जैजैवंती, (३७) कानरो, (३८) नायकी (३९) रायसो (४०) अडानो, (४१) बिहाग, (४२) बिहागरो,

उपर्युक्त राग-संख्या से ज्ञात होता है कि सूरदसजी की मान्यतानुसार ६ राग और प्रत्येक राग की ६ भार्याएँ पद्धति को परमानंददसजी ने भी मान्य किया है, किन्तु दोनों के राग-नामों में पूर्ण समानता नहीं है, कुछ अन्तर दिखाई देता

---

* *'परमानंद सागर' कांकरोली प्रकाशन के आधार पर.*

है। संगीत की दृष्टि से सूरदास के समान आपने भी विविध अंगों से राग-गायन किया है।

साहित्य दृष्टि से कहा जाता है कि "इस प्रकार की रचनाएँ अष्टछाप के सभी कवियों के काव्य में मिलती हैं, किन्तु सूरदास, परमानंददास और नंददास की रचनाएँ सर्वश्रेष्ट हैं।"*

व्रज में आने के पश्चात् उन्होंने अपना शेष जीवन पद-रचना एवं कीर्तन-गान की सेवा में लगाते हुए ९१ वर्ष की अवस्था में भगवल्लीला में प्रवेश किया।

---

* अष्टछाप परिचय—पृष्ठ १८१,

संगीताचार्य गोविन्दस्वामी

गोविंदस्वामी सनाढ्य ब्राह्मण थे । भरतपुर जिले के आंतरी ग्राम में सं. १५६२ (ई. स. १५०६) में उनका जन्म हुआ था । इनकी एक लड़की थी । कुछ समय पश्चात् इन्हें संसार से विरक्ति हो गयी और ब्रज के महावन ग्राम में जा कर रहने लगे । शास्त्रोक्त विधि से महावन के ऊँचे टीलों पर बैठकर भगवद्गुण–गायन किया करते थे। वे उच्चश्रेणी के संगीताचार्य एवं उत्तम गायक और कवि थे । गान विद्या के उत्तम ज्ञाता होने के कारण इनके अनेक शिष्य थे, इसीलिये वे 'स्वामी' कहलाते थे । कोई शिष्य इनसे पद-गान सीख कर गोकुल जा कर श्री गुसाँईजी को पद सुनाता तो वे प्रसन्न होते और उसे प्रसाद से सम्मानित करते थे । इस प्रकार ये परोक्ष रूप में श्रीगुसाँईजी से परिचित हो गये थे।

एक समय श्रीगुसाँईजी के एक सेवक से इनका सत्संग हुआ और आपने भगवद्लीला के दर्शन की आतुरता उनके समक्ष प्रकट की। उस वैष्णवों की प्रेरणा से ये गोकुल गये। वहाँ गुसाँईजी के स्वरूप का और श्री ठाकुरजी की बाललीला के रसात्मक रूप का साक्षात्कार हुआ । तब वे श्री गुसाँईजी की शरण में सं. १५९२ में आये। उस समय आपने राग-सारंग में निम्नलिखित पद गा कर अपनी कृतज्ञता एवं आसक्ति प्रकट की––

"श्रीवल्लभनंदन रूप अनूप स्वरूप कह्यो नहिं जाई ।
प्रगट परमानंद गोकुल बसत है, सब जगत को सुखदाई ।।१।।
भक्ति मुक्ति देत सबको निजजन पर कृपा बरखत अधिकाई ।।
सुखमय सुख रूप एक रसना कहां लौं बरनों 'गोविंद' बलजाई।।२।।

'गोविंदस्वामी' तब से 'गोविंददास' बन गये । शरण आने के पश्चात् श्री गोविंद स्वामी को श्रीजी की कीर्तन-गान की सेवा में सम्मिलित किया गया। जब अष्टछाप की स्थापना हुई तब श्री गुसांईजी ने इनकी योग्यता देखकर (सं. १६०७ में) गोविंददासजी को आठों कीर्तनकारों में मुखिया (मुख्य गायक) का स्थान दिया। यद्यपि उनके पूर्ववर्ती श्रीसूरदासजी, श्री परमानंददासजी तथा श्रीकृष्णदासजी भी उच्चकोटि के गायक थे किन्तु कृष्णदासजी अधिकारी के स्थान पर थे तथा सूरदास जी और परमानंददासजी वृद्ध हो चुके थे अतः गोविंददास को मुख्य स्थान दिया

गया । आज भी श्रीजी के कीर्तनकारों में मुखिया की गद्दी में गोविंदस्वामी की भावना की जाती है।

अष्टछाप कीर्तनकारों में श्रीकुंभनदास और गोविंदस्वामी' एकांत के सखा हैं, अर्थात् एकांत के समय श्रीनाथजी उनसे खेलते थे, हास्य-विनोद करते थे। यही नहीं दर्शन के समय भी इन्हें प्रत्यक्ष लीला की झाँकी का अनुभव कराते थे और तदनुसार ये उसी समय संगीतबद्ध पद-गान किया करते थे। इस विषय में उनकी ◦ 'श्री गोवर्धनरायलाला' की धमार सुप्रसिद्ध है। वार्ता में उल्लेख है कि शयन के दर्शन में गोविंदस्वामी इस पद की तीन तुक गा कर चुप हो गये, तीसरी तुक में "अचकां अचकां आइकें भाजी गिरिधर गाल लगाय" के अनुसार अरगजा कुंकुम लगा कर गोपिका के भाग जाने से खेल अधूरा रह गया और कवि का मन उलझ गया। तब श्री गुसाँईजी ने निम्न प्रकार पूर्ति कर धमार पूर्ण की––

"या विधि होरी खेलहिं ब्रजवासिन संग लगाय
श्रीगोवर्धनधर रूप पें जन 'गोविंद' बलि बलि जाय ।।४।।

गोविंदस्वामी शुद्ध राग के पक्षपाती थे। अशास्त्रीय ढंग से गाना वे अनुचित समझते थे। गायन में ताल, लय और स्वर को वे अति महत्व देते थे। अनुचित गान से प्रभु कदापि नहीं रीझते, यह उनका पक्का विश्वास था। इस विषय में उनकी वार्ता का एक प्रसंग उल्लेखनीय है–

"एक दिन गोविंददास जसोदाघाट पर बैठे हते, तहाँ एक बैरागी बैठ्यो गावत हतो। सो बहुत बेसुरो गावै। सुर कहूं, अक्षर कहूं, ताल कहूं, राग कहूं। सो सुनिके बैरागी सौं कह्यो जो अरे बैरागी! गाइवो खराब क्यों करत हौ? न तो तेरो सुर ठीक, न तेरा राग ठीक, तू ऐसो काहे कों गावत है? गाइवो न आवै तो मति गावै।" तब वा बैरागीनें कह्यो जो हौं तो अपने राम कों रिझावत हों। गाइवो नाहीं आवत तो कहा भयो? मेरो राम तो रीझत है। तब गाविददास ने कह्यो जो तेरो राम ऐसो मूरख नाहीं, जो तेरे पर रीझेगो। हमही न रीझेंगे तो राम कहा रीझेगो?"**

◦ *इस धमार का राग 'वार्ता-रहस्य' में 'रायसो' प्रकाशित है किन्तु वास्तव में यह धमार का राग कल्याण है। कांकरोली प्रकाशन 'गोविंदस्वामी' पृ. ११ पर उल्लेख है कि "सो कल्यान राग में एक नई धमार गावत है" किन्तु धमार के शीर्षक में 'राग-कानरो' छपा हुआ ठीक नहीं है।*

*** 'गोविंदस्वामी' कांकरोली प्रकाशन (वार्ता त्रयोदश) पृष्ठ १३*

संगीत शास्त्र के विद्वान् और सुप्रसिद्ध गायक गोविंद स्वामी से अकबरी दरबार के संगीत-सम्राट तानसेन ने भी संगीत सीखा था।

उन्हीं की प्रेरणा से तानसेन श्री गुसाँईजी शरणागत हुए थे। प्रथम बार तानसेन ने जब 'गोविंदस्वामी' का पद-गान सुना तब वे चकित हो गये और श्री गुसाँईजी से कहा कि "महाराज ! इनके आगे मेरो गानो ऐसो है, जैसे मखमल के आगे टाट होत हैं। आप गोविंदस्वामी सों आज्ञा करें, जो-मोकों ये गान विद्या सिखावे। तब श्री गुसांईजी आज्ञा किये, जो–गोविंददास ! इनको कीर्तन सिखइयो। तब तानसेन कछूक दिन गोविंदस्वामी के पास रहे। मार्ग की प्रणाली अनुसार कीर्तन सीखे। ता पाछें श्रीगुसाँईजी की आज्ञा पाइ श्रीनाथजी के सम्मुख कीर्तन करन लागे"

इस विधान से ज्ञात होता है कि, 'तानसेन के प्रभु' छाप के जितने पद प्राप्त होते हैं, वे सब उपर्युक्त घटना के पश्चात् की रचनायें हैं और 'मियां तानसेन' छाप की रचनायें तत्पूर्व की कही जायेंगी।

"भैरवी राग छुई जाने से उन्होंने कभी इस राग का गान नहीं किया इस प्रकार की आख्यायिका सम्प्रदाय में प्रचलित है किन्तु सम्प्रदाय के ग्रन्थों में अधिकतर 'भैरव' राग का ही उल्लेख प्राप्त होता है। देखिए:—

श्री गोविंदस्वामी सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनका जन्म सं. १५६२ में भरतपुर जिले के आंतरी ग्राम में माना जाता है।

(१) "एक समय गोविंददास जसोदा घाट उपर बैठे हते, प्रात:काल को समो हतो। सो गोविंददास ने भैरव राग अलाप्यो। सो भैरव राग ऐसो जम्यो जो–कुछ कहिवे में नाहीं आवे। सो एक म्लेच्छ चल्यो जात हुतो सो वाने गोविंददास को आलाप सुनि कें माथो धुन्यो। और कह्यो जो-वाह वाह ! कैसो भैरव आलाप्यो है? सो म्लेच्छ की बात सुनि कें गोविंददास नें कह्यो, जो-अरे ! राग तो छी गयो, जो म्लेच्छनें सराह्यो है, सो राग श्री गोवर्धननाथजी के आगे कैसे गाऊँ? राग तो छी गयो। सो ता दिन तें गोविंददास ने भैरव राग में कोई पद कियो नाहीं"

(२५२ वैष्णवन की वार्ता, कांकरोली प्रकाशन सं.-१९१० (२) प्राचीन वार्ता रहस्य-द्वितीय भाग, वार्ता पृ. ३२३ वार्ता प्रसंग-१२ प्रकाशन सं. १९१८, पृष्ठ २८५ पर भी उपर्युक्त उल्लेख के अनुसार ही विवरण दिया गया है।)

(३) अष्टछाप-परिचय अग्रवाल प्रेस पृ. २४४ पर भी निम्नलिखित उल्लेख किया गया है:—

• २५२ वैष्णवन की वार्ता (प्रकाशन-शुद्धाद्वैत एकेडेमी) पृष्ठ-१५६-५७

"गोविंदस्वामी गोकुल के यशोदा घाट पर बैठकर 'भैरव" राग का आलाप कर रहे थे। प्रात:काल के शांत और सुखद वातावरण में राग का ऐसा समाँ बंधा कि आने-जाने वाल राहगीर भी मंत्रमुग्ध से हो गये। कहते हैं कि उन्हीं राहगीरों में अकबर बादशाह भी एक साधारण यवन के वेष में छिप कर गाना सुन रहे थे। गायन पर मुग्ध होकर अकस्मात् बादशाह के मुख से 'वाह-वाह' की ध्वनि निकल पड़ी। इन प्रशंसात्मक शब्दों को सुनकर गोविंदस्वामी ने उनकी ओर देखा और खिन्न मन से वे गायन बंद कर खड़े हुए। उनका राग यवन के स्पर्श से भ्रष्ट हो गया ०००फिर जीवन पर्यंत उन्होंने भैरव राग में श्रीनाथजी का कीर्तन नहीं किया।" केवल 'गोविंदस्वामी कांकरोली प्रकाशन (सं. २००८) पृष्ठ १५ पर वार्ता-पंचदश में भैरव के स्थान पर 'भैरवी' (राग) का उल्लेख छपा हुआ है, किन्तु तत्पूर्व प्रकाशित कांकरोली प्रकाशन (१) वार्ता-रहस्य में एवं तत्पश्चात् (२) सं. २०१० में 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में 'भैरव' राग का ही स्पष्ट उल्लेख है। इस प्रकार अन्य प्रकाशित अप्रकाशित पुस्तकों में 'भैरव' अथवा 'भैरवी' नाम दिखाई देते हैं।

(१) हमारे मतानुसार तत्पश्चात् 'भैरव' राग का गान नहीं किया यह उल्लेख ही वास्तविक कहा जायगा। ऐतिह्य दृष्टि से अकबर बादशाह का समय और म्लेच्छों (यवनों) का स्वच्छन्द आना-जाना वि. सं. १६१२ से आरंभ होता है। अत: इस घटना का समय यदि वि. सं. १६१४ के आसपास का माना जाय तो भी तत्पूर्व उन्हें शरण आये बीस वर्ष हो चुके थे। इस समय में भी उन्होंने 'भैरवी' में गान किया यह सिद्ध नहीं हो सकता।

(२) वास्तव में इनके पूर्ववर्ती सूर, कुंभन, परमानंद, कृष्णदास आदि अष्टछाप के किसी भी महानुभाव ने भैरवी राग में गान किया नहीं है।

(३) भैरवी, पीलू, मांड इत्यादि अनेक शूद्र प्रकृति के एवं संकीर्ण राग सम्प्रदाय के आरंभ से ही कीर्तन गान में वर्ज्य हैं (विशेष विवेचन इसी ग्रन्थ के 'राग और राग संख्या' प्रकरण में देखिए)।

(४) यह स्पष्ट तथ्य है कि, उपर्युक्त घटना के पूर्व भी सम्प्रदाय में भैरवी राग वर्ज्य होने से गाया नहीं जाता था। अत: परवर्ती गोविंदस्वामी का भैरवी राग-गान हेतु जीवन भर निषेध करने का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

प्रात:कालीन भैरव राग, जो सम्प्रदाय के मुख्य रागों में माना गया है और आरंभ से जिसका गान किया जाता रहा है, उसे गोविंदस्वामी ने उस दिन से श्रीजी के सम्मुख गान बन्द किया यह निश्चित कहा जा सकता है। क्योंकि इस घटना के पूर्व गोविंदस्वामी के भैरव राग में गाये हुए एक दो पद प्राप्त होते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तत्पश्चात् गोविन्दस्वामी ने भैरव राग में कोई भी कीर्तन गान नहीं किया किन्तु तत्पूर्व अपने गाये जाने वाले रागों में 'भैरव'

का समावेश किया था। अतः गोविंदस्वामी के माने हुए ६ राग और ३० रागिनियाँ मिलाकर उनके मतानुसार निम्न प्रकार से ३६ राग प्राप्त होते हैं—

१. भैरव, २. रामकली, ३. विभास, ४. ललित, ५. मालकोंस, ६. रामग्री, ७. देवगंधार, ८. बिलावल, ९ टोडी, १०. आसावरी, ११. धनाश्री, १२,सारंग, १३. वसन्त, १४. सोरठ , १५. मल्हार, १६ सोरठ मल्हार, १७. नट, १८. पूर्वी, १९. श्री, २० जेतश्री, २१. मालीगौरा, २२. गौरी २३. मालव, २४हमीर, २५. ईमन, २६. कल्याण, २७, केदारो, २८. कानरो, २९. अडानो, ३०. रायसो, ३१. विहाग, ३२. बिहागरी, ३३. सुहा, ३४. नायकी, ३५. मारू, ३६ काफी,

इनके बहुत से पदों से जिस राग में जो गाया जाता है उसी राग का नाम लीला से सम्बद्ध किया गया है। जैसे:—

"माई नीके लागें दूलह दुलहिन खेलत फाग।"
० ० ० "अद्भुत राग जम्यो सुर **टोडी** उरप तिरप गति लाग ।।२।।

(२) "सघन छटा घन घोर नेन्ही,
"गोविंद बलि सुघर दोऊ गावत, **केदारो** राग तान अति सरसे"

तदुपरान्त जिस राग में कीर्तन गान किया है, उसी राग की स्वर-जाति (संख्या) का भी उल्लेख पाया जाता है, जैसे:–(१) राग-नट, का "झूलत नवरंग रंग संग राधा गिरिधर चंद"" इस कीर्तन में "सप्तसुरनि राग रंग' कह कर नट राग की जाति सम्पूर्ण होने का निर्देश किया है।

(२) राग-केदारे का सुप्रसिद्ध कीर्तन "दोऊ मिल झूलत कुंज कुटिर" में 'सप्तसुरनि मिलि गावत दोऊ" इनमें सम्पूर्ण-जाति का उल्लेख स्पष्ट है।

(३) राग-कानरा-"झूलत है नंदलाल झुलावे प्यारी राधा" में "राग कानरो सप्त सुर राजत गावत गीत रसाल" इन में भी कानरा राग में सातों स्वरों का उल्लेख किया गया है।

यही नहीं कुछ पदों में राग में गाये जाने वाले स्वरों का भी उल्लेख किया गया है। देखिए:–राग–ईमन का निम्नलिखित पद—

"नंदलाल संग नाचति नवल किसोरी ।।
"षड्ज रिषभ गंधार सप्तसुरनि,
मधिम तीर लेत ग्रग्रततत्तत होरी ।।१।।

इस प्रकार 'ईमन' राग में सा, रे, ग इत्यादि सप्तसुर और मध्यम तीव्र लिये जाने का स्पष्ट वर्णन है। राग-कदारे के निम्नलिखित पद में नृत्य और

मृदंग के बोल सहित सप्त सुरों का वर्णन भी प्राप्त होता है––

“नाचत गोपाल संग गोप कुंवरि अति सुधंग,
तत्थेई तथेई तथेई तथेई मंडल मधि राजे ।
“संगीत गति भेद मान लेत सप्त सुर बंधान,
धिधिकटि धिधिकटि मृदंग मधुर-मधुर बाजे ।।१।।”

निम्नांकित पद-गान में कवि संगीत कला की चरम सीमा तक पहुँचे हुए दिखाई देते हैं। मोहन (श्रीकृष्ण) और वृषभान-नंदिनी (राधा) का सम्मिलित गायन, वादन और नर्तन कला के उत्कृष्ट वर्णन में कलापक्ष की भव्य झाँकी दिखलाई देती है––

राग–ईमन

“तिग-तिग (गिड़ि-गिड़ि) थुंग थुंगनि तकिटि थुंगनि,
एक चरन कर सों भले हो मृदंग बजावें ।
दूसरे कर चरन कर सों कठताल त्रिकटि झंझं
झपताल में अवघर गति उपजावें ।।१।।
कंठ सरस सुरही गावें बोहन मधुरी तान लावें,
सकल कला गुन पूरन वृषभाननंदनी पिय मन भावें ।
गोविंद प्रभु रीझि रहे मुसिकाई, रसन दसन धरिकें
रहसि रहसि उरसि लपटावें ।

श्री राधा एक चरन और एक कर से उनके बोलों के साथ मृदंग बजा रही है, दूसरे कर और चरण से झपताल में कठताल के बोल को अवघर गति (आड़ीलय) में उपजा रही है । इसके साथ मोहन सुंदर कंठ से सरस स्वरों में मधुर-मधुर गान कर रहे हैं।

कहीं कहीं तो संगीत की मौलिक उद्भावना से कवि ने नायक गोपाल और बैजू के समान स्वतंत्र व्यक्तित्व स्थापित किया है। उदाहरणार्थ––

० राग–कान्हरो

स्थायी

‘महिमा धनि तुव मति श्रेष्ठ तुव परम निपुनि नृत्त तेरो बन्यो,
स्यामा वृन्दावन रीझे बीसों बीसा’ ।

---

० *‘गोविंदस्वामी’ प्रकाशन कांकरोली*–पृ. १६८

अंतरा

'सप्त सुर तीन ग्राम इक्कीस मूर्च्छना बाईस स्रिति राग मध्य रंग राख्यो, सरगम
पधनिसा, सासासासा निनिनिनि, धधधध पपपप, मममम गगगग रे रे सा सा।।१।।

संचारी

'जो इन नैननि सैंननि बैंननि गोंननि नयो हस्तक भेद करि दिखाई ले री प्रीतम
को चित चोरि लीनो कीनो अरु बढ़ी निसा ।।

आभोग

'गोविंद' प्रभु रस बस करि तोरि तोरि जोरि जोरि अवलोकत तेरी ताई अनतजवे
की भूलि गई दिसि विदिसा ।।२।।"

गोविंदस्वामी के कीर्तनों में निम्नांकित वाद्यों के नाम प्राप्त होते हैं—

बीन, मृदंग, झांझ, वेणु-बाँसुरी, उपंग, कठताल, अमृतकुंडली, आवज, किन्नरी, रवाब, दुंदुभी, ताल, मुरली, डिम-डिम, झालरी, रुंज, ढोल, मुरज, पखावज, भेरि, अधौटी, सहनाई, शंख।

संगीत के पारिभाषिक शब्द—

राग, उरप, नाद, तान, तिरप, मान, निर्तत-नृत्यत-नाचत, सप्तसुर, ग्रग्र, तत्, थेई, थुडी, तकिट, गिड़ि, तीन ग्राम, लाग-डाट, मूर्छना, गति (लय), स्रिति (श्रुति), झपताल सुर (स्वर), अवघर, संगीत, गति (यति)।

---

० 'गोविंदस्वामी' पृ ५३.

अष्टछाप के संगीतकीर्तनाचार्य

'छीतस्वामी'

छीतस्वामी का जन्म मथुरा में सं. १५७२ के लगभग हुआ था। वे मथुरा के पंडा थे और उनके घर में यजमानी का काम होता था। प्रारंभिक जीवन में मथुरा के पाँच प्रसिद्ध गुंडों में उनकी गणना थी। वार्ता में लिखा है—

"एक दिन पाँचों चोबेननें मिलिकें विचार कियो जो गोकुल के गुसाँई टोंना टमना बहुत करत हैं। जो उनके पास जात है, सो इनके बस होय जात है। तब उन पांचों ने मिलिकें एक खोटो रुपयौ और थोथो नारियल लियो, तामें राख भरी, और यह विचार कियो जो गोकुल जायकें श्री गुसाईजी सों कुटिल विद्या करिये।" पश्चात् वे गोकुल गये और खोटा रुपया तथा थोथो नारियल श्रीविट्ठलनाथजी को भेंट किया। श्रीगुसाँई जी के चमत्कार से दोनों अच्छे हो गये। नारियल के टुकड़े करने पर अच्छी सफेद गिरी निकली और रुपया के बाजार से पैसे मँगवा लिए। इस चत्मकार से उनकी वृत्ति बदल गई और अपनी दुष्टता पर पश्चात्ताप होने लगा। फिर (सं. १५९२) में श्री विट्ठलनाथजी के शिष्य बनकर पुष्टि सम्प्रदाय के भगवद्‌भक्त बन गये।

सम्प्रदाय-प्रवेश के पहिले छीतू में कवित्व शक्ति का बीजरोपण हो चुका था। बचपन से ही काव्य-संगीत में रुचि थी और वे काव्य-रचना किया करते थे। किन्तु सम्प्रदाय की दीक्षा के बाद अनुकूल वातावरण ही नहीं सूर, कुंभन परमानंद आदि कीर्तनाचार्यों द्वारा प्रभु के लीलामय एवं संगीतमय संकीर्तनों के सिंचन से जो जीवन प्रतिभा और काव्य-संगीत प्रतिभा आई, उसने उनके लिये फलस्वरूप होकर अष्टछाप जैसी महनीय शैली में प्रतिष्ठित प्रभा प्राप्त करा जीवन को धन्य बना दिया।

वि. सं. १५९२ में शरण जाने के पश्चात् क्रमशः उनके काव्य और संगीत विषय के ज्ञान में और भी विकास हुआ। काव्य-संगीत में इनकी निपुणता को देखकर श्री विट्ठलनाथजी ने सं. १६०२ में अष्ट सखा की भावना से अष्ट संगीताचार्यों की मंडली में सम्मिलित किया तत्पश्चात् सं. १६०८ के प्रारंभ में जब अष्टछाप की स्थापना की तब 'अष्टछाप' में इनको सम्मानपूर्वक स्थान प्रदान किया था।

वे शरण आते ही छीतू से छीतूस्वामी पद प्राप्त कर चुके थे। वे प्रभु (गिरिधर) और गुरु को एक रूप मानते थे। शरण आने के अनंतर उनकी प्रथम

पद रचना राग-सारंग में निम्न प्रकार से प्राप्त होती है––

"जे वसुदेव किये पूरन तप, तेइ फल फलित श्रीवल्लभ-देह ।
"छीतस्वामी' गिरिधरन श्रीविट्ठल, तेइ एइ एइ तेइ कछु न संदेह"

इस प्रकार उन्होंने अपनी छाप में 'छीत' शब्द अपने लिये और स्वामी गिरिधर के विशेषण रूप में प्रयुक्त कर दासोऽहं की भावना प्रकट की है । उनके प्रायः सभी पदों में 'छीतस्वामी गिरिधर' या "छीतस्वामी गिरिधरन श्री विट्ठल" छाप लगाकर प्रभु और गुरु में समान भावना प्रकट की है । स्वकीय गुरुवर्य श्री विट्ठलनाथजी के सम्बंध में आपके बहुत से पद प्राप्त होते हैं । 'श्री वल्लभचार्य महाप्रभु' से संबंधित पद भी हैं। भगवल्लीला के एवं फुटकर पद मिलाकर उनकी २०० पद रचनाएं प्राप्त होती हैं। आपकी कविता सरल, भाषा सीधी और काव्य-सौन्दर्य मध्यम प्रकार का कहा जा सकता है।

पुष्टिमार्गीय दीक्षा के बाद वे गोवर्धन के पास 'पूंछरी' स्थान पर एक श्याम तमाल वृक्ष के नीचे रहते हुए श्रीनाथजी की कीर्तन-गान सेवा में अपना समय लगाया करते थे। इनकी कीर्तन-सेवा का मुख्य समय संध्यार्ति, लीलात्मक स्वरूप 'सुबल' सखा एवं पद्मा सखी था । स्वरूपासक्ति 'श्रीविट्ठलनाथजी' में और 'सेहरा' के शृंगार में उनकी आसक्ति थी ।

संगीत की दृष्टि से तो उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों की मान्यतानुसार ३६ राग-रागिनियों का अपने पदों में प्रयोग किया है। किन्तु अन्य अष्टछापी महानुभावों की अपेक्षा आपकी गायन-कला सीधी और सरल दिखाई देती है। अटपटी बंदिशें और विभिन्न तालों के अंग प्रत्यंग उत्कृष्ट नहीं दिखाई देते। तथापि उनका संगीत-विषयक उत्कृष्ट ज्ञान एवं उच्च प्रतिभा प्रशंसनीय थी जिसका परिचय अधोप्रस्तुत उदाहरणों में देख सकते हैं:––

(१) राग वसन्त के पद में––

"आयो रितुराज साज पंचमी वसंत आज"
"बाजत आवज उपंग, बांसुरी मृदंग चंग"

(२) राग-सारंग की धमार में:––

"सुरंगी होरी खेले सांवरो" तथा

रुज मुरज डफ बांसुरी, भेरिनिको भरपूरि
फूँकनि फेरी फेरिकें उचे गई श्रुति दूरि"

(३) राग-मल्लार के पद में—

"नागर नंदलाल कुंवर मोरनि संग नाचें।"
"उरप तिरप सुलप लेत, पाद घात सांचें"
"उदित मुदित सघन गगन घोरत घन दे दे भेद,
कोकिला कल गान करत पंचम सुर बाँचे ।।"

(४) राग—सारंग—

"कुंज महल प्यारी संग बैठे लाल करत रंग ।।
अधर धरें मुरली स्याम सारंग सुर बजावै ।।१।।
अवघर विकट तान लेत स्वर सुर बंधान
उपजावत मान विविध रस बढ़ावै ।।"

(५) राग ताल के नामोल्लेख भी उनकी रचना में निम्न प्रकार से मिलते हैं।

राग—केदारो

मधुर मोहन मुख मुरली बाजै ।
सुनहि किन कान दै सुघर व्रजनागरी,
राग केदारो चर्चरी ताल साजै ।।१।।
सप्तसुर भेद बंधान तुअ नाम लै,
करत गुन गान मिलि तुव हित काजैं ।।"

इस पद में केदारा में सप्त सुर होने का विधान किया है।

(६) रास के निम्नलिखित पद में गोविन्द स्वामी तथा कृष्णदासजी के समान उत्कृष्ट संगीत ज्ञान की झाँकी दिखाई देती है।

राग-ईमन

लालसंग रासरंग चत मान रसिक रमन
ग्रग्रता ग्रग्रता त्त त्त त्त त्त त्त त्त त्त थेहे गति लीने ।"
स रि ग म प ध नि, ग म प ध नि धुनि सुनि ब्रजराज
राज कुंवर गावतरी अति गति यति भेद सहित
ताननि नांन न न न न न न अति अनि अस लीने ।।१।।

उनके पदों में संगीत के निम्नांकित पारिभाषिक शब्द प्राप्त होते हैं:—

तान, श्रुति, सप्तस्वर, संगीत, उरप, तिरप, सुलप, पद-घात, पंचम-सुर, स्वर, अवघर, गति यति, मान, ताल,सारंग, केदारो, ग्रग्रता, तत्त, थेई, सरिगमपधनि। अनेक वाद्यों का नामोल्लेख भी है:—

आवज, उपंग मृदंग, चंग, डफ, रूंज, मुरज, बांसुरी, भेरि फूंक-निफेरी, मुरली आदि ।

जिन ३६ राग रागनियों में उन्होंने गान किया है, वे इस प्रकार हैं:—

(१) भैरव, (२) रामकली, (३) विभास, (४) ललित, (५) देवगंधार, (६) बिलावल, (७) टोडी, (८) आसावरी, (९) धना श्री (१०) सारंग (११) वसंत, (१२) सोरठ, (१३) मल्हार, (१४) सोरठ मल्हार, (१५) नट, (१६) पूर्वी, (१७) श्री, (१८) जेत श्री, (१९) माली गौरा (२०) गोरी, (२१) मालव (२२) हमीर (२३) ईमन, (२४) कल्याण, (२५) केदारो, (२६) कानरो, (२७) अडानो, (२८) विहाग, (२९) बिहागरो, (३०) गुर्जरी, (३१) काफी, (३२) जोनपुरी, (३३) मालश्री, (३४) नायकी (३५) हमीर कल्याण, (३६) केदारनट ।

चतुर्भुजदासजी

चतुर्भुजदास सम्प्रदाय के सर्व प्रथम कीर्तनकार श्री कुंभनदास जी के सब से छोटे और सातवें पुत्र थे। उनके जन्म संवत् के संबंध में मतभेद है। हमारे मतानुसार उनका जन्म जमुनावता ग्राम में सं. १५८७ में हुआ था। कुंभनदासजी को प्रथम पांच पुत्रों के सेवा-विमुख होने के कारण घोर असंतोष था। छठा पुत्र कृष्णदास श्रीनाथजी की गायों की रखवारी की सेवा करता था इसलिए उनसे वे संतुष्ट थे किन्तु चतुर्भुजदास में अपने सभी संस्कार प्रदान करने की महत् शुभेच्छा होने के कारण बाल्यावस्था से ही उसे भक्ति, काव्य, संगीत तथा सेवा-सत्संग में प्रवृत्त रखते थे। दस वर्ष की आयु में ही वे पिता के गुणों का अनुकरण करने लगे। श्री गुसांईजी के आशीर्वाद से ही चतुर्भुजदास का जन्म हुआ था। अतः श्री गुंसाईजी ने भी गुणज्ञ चतुर्भुजदास को प्रसन्न होकर सं. १५९७ में सम्प्रदाय की दीक्षा देकर कीर्तन में मन लगाने का आशीर्वाद दिया। आपके आशीर्वाद से वे श्रीनाथजी की कीर्तन-सेवा में पिता की सहायता करते थे। बाल्यावस्था से काव्य-संगीतादि के सिंचन से पैतृक कला में योग्यता युवावस्था के प्रारंभ तक प्राप्त कर चुके थे।

एक बार पिता-पुत्र अपनी झोंपड़ी में बैठे हुए थे। वहाँ से श्रीनाथजी के मंदिर के झरोखों में दीपक का प्रकाश दिखलाई देने लगा। उस समय कुंभनदासजी ने शयन के अनुभवात्मक पद की एक पंक्ति का निम्न काव्य में गायन किया––"वे देखो बरत झरोखन दीपक, हरि पौढ़े ऊँची चित्रसारी" यह सुनते ही चतुर्भुजदास को भी श्रीनाथजी की उसी लीला का अनुभव हुआ और उसी समय उन्होंने दूसरी पंक्ति (अंतरा) गाकर प्रथम तुक की पूर्ति की।* "सुंदर बदन निहारन कारन, राखे हैं बहुत जतन कर प्यारी।" इस प्रसंग के पश्चात् कुंभनदासजी को विश्वास हो गया कि मेरा यह पुत्र वास्तव में मेरी इच्छा पूर्ण करेगा। श्रीनाथजी की भक्ति, सेवा-भावना, पद-रचना और संगीत कला से प्रसन्न होकर गुसांईजी ने नव युवक चतुर्भुजदास को सं. १६०२ में अष्ट सखाओं में सम्मिलित कर लिया। यही नहीं सं. १६०७ में अष्टछाप की स्थापना के महोत्सव में अपने वयोवृद्ध पिता एवं बड़े-बड़े भक्त कवियों और संगीत कीर्तनकारों में सम्मानपूर्वक सम्मिलित होना बीस वर्ष के युवक चतुर्भुजदास के लिए गौरव की बात थी।

---

* वार्ता प्रसंग-४

एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के जन्म दिन पर शृंगार के दर्शन करके चतुर्भुजदास ने निम्नलिखित पद का गान किया–– राग-बिलावल–*

"सुभग सिंगार निरखि मोहन को, लै दरपन कर पिय ही दिखावै"
आपुन नेंक निहारहु बलि गई, आज की छबि कछु कहत–
न आवे ।।१।।

भूखन बसन्त रहे ठनि ठाऊं, अंग अंग सोभा चितही चुरावै ।।
बार बार पुलकित तन सुंदरि, फूलनि रचि रचि पाग बनावै ।।२।।
अंचर फेरि करति नौछावरि, तन मन अति अभिलाख बढ़ावै ।।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधर को रूप रस, पिबत नैंन पुट तृप्ति न पावें ।।३।।

जन्मोत्सव के दिन जन्म-बधाई के स्थान पर उपर्युक्त पद-गान से एक वैष्णव को आश्चर्य हुआ। उनके संदेह निवारणार्थ श्री गुसांईजी की आज्ञा से चतुर्भुजदास ने गोविंदकुंड पर निम्नांकित पद भी सुनाया––

राग-बिलावलः––

"माईरी आज और काल्ह और छिन प्रति और और,
देखिये रसिक श्री गिरिराज धरन ।।१।।‡

तथापि उन वैष्णव की समझ में रहस्य नहीं आया। अतः श्री गुसांईजी ने गूढ़ तत्त्व स्पष्ट करते हुए कहा कि––

"आज श्री महाप्रभुन को जनम उत्सव हतो तातें श्री स्वामिनीजी ने अपने मनोरथ को सिंगार-सामग्री सब अपने हाथ सों धराये हैं।"

इसी कारण से "लै दरपन कर प्रिय ही दिखावै" तथा "आज की छबि कछु कहत न आवै" इत्यादि वर्णन का पदगान किया। दूसरे पद के भावार्थ में कहा कि "जितने ब्रज भक्त हैं सो अपने-अपने मनोरथ की सामग्री धरावत हैं। अपने-अपने वस्त्र-आभूषण धरावत हैं तातें "आज और काल्ह और सो क्षण-क्षण में अनेक ब्रजभक्तन के मनोरथ को भाव है।"

वार्ता प्रसंग ६ में रासलीला-प्रसंग का उल्लेख प्राप्त होता है––

---

* वार्ता प्रसंग-५

‡ यह (कीर्तन) ध्रुपद-गवैयों में तथा संगीत के विद्वानों में अति प्रसिद्ध हो चुका है। यह पद पं. भातखंडेजी की पुस्तक क्रमांक २, तथा 'संगीत कलाधर' में कुछ पाठांतर से छपा हुआ है। जिसका शुद्ध पाठ इसी ग्रन्थ के "प्रचलित ध्रुपद गायन में हवेली संगीत" प्रकरण में दिया जायगा।

"ताही समें श्री गोवर्धननाथजी तथा श्री गिरिधरजी होऊ जने चंदसरोवर ऊपर आये" पीछें श्री गोवर्धननाथजी अपने ब्रजभक्तन के संग रासलीला करी रात्रि हू बढ़ि गई ता समे चत्रभुजदास ने यह कीर्तन गायो:—

राग-केदारो

"अद्‌भुत नट भेख धरे जमुनातट श्यामसुंदर,
गुननिधान गिरिवरधर रास रंग नाचें ।।

जुवति-जूथ संग मिलि गावत केदार राग,
अधर बेनु मधुर-मधुर सप्त सुरनि साँचे ।।१।।

उरप तिरप लाग डाट तत् तत् तत् थेई तथेई थेई,
उघरत सब्दावलि गति-भेद कोउ न बांचे ।।

'चत्रभुज' प्रभु बन बिलास, मोहे सब सुर अकास,
निरखि थक्यो चंद, रथहि पच्छिम नहिं सांचे ।।२।।

इस प्रकार चतुर्भुजदास के पदों में रागोल्लेख के अतिरिक्त संगीत के पारिभाषिक शब्दों की रचना से ज्ञात होता है कि वे संगीत में अति प्रवीण और ज्ञाता थे। उपर्युक्त पद में राग केदार का उल्लेख है और वह कीर्तन केदारा में ही आज गाया जाता है। आपका अधोलिखित पद भी संगीत के शास्त्रीय ज्ञान का परिचायक है—

"मदन गोपाल रास मंडल में मालव राग रसभर्यो गावै"
"अवघर तान बंधान सप्तसुर मधुर-मधुर मुरलिका बजावै ।।१।।
निर्तन सुलप लेत संच गति, बहुबिधि हस्तक भेद दिखावै ।।

× × ×

'चत्रभुज प्रभु' गिरिधर नट नागर, सुरनरमुनिगति मति बिसरावै ।।३।।

इसी प्रकार रास का एक अन्य पद भी आपकी साहित्य-संगीत-नृत्यकला की पारंगतता का द्योतक है—

राग-केदारा :

"रिझये सखि तें साँवरो सुजान राइ ।
तान बंधान अनूपम विधि सों, मधुर ताल सुर सुघर गाई ।।१।।
× × × **उघरत शब्द संगीत स्वामिनी निर्तति पग नूपुर बजाई"**
× × × **चतुर्भुजदास प्रभु गोवरधनधर, लेत रहसि हँसि कंठ लगाई ।।३।।**

रास के उपरान्त वसंत-खेल के कीर्तनों में भी वाद्यों का उल्लेख निम्नलिखित नटनारायण राग में गाये जाने वाले पद में प्राप्त होता है—

राग-नटनारायण—

"खेलत गिरिधरनलाल, परम मुदित ग्वाल बाल"
इत बनी ब्रज नारी नवल होरी बोलना ।।
गावत नटनारायण राग, जुवती-जन खेलत फाग
गारी देति गोप कुंवरि करि कलोलना ।।१।।
बीना बेनु तान तरंग, बाजत मधुर मृदंग,
भेरि महुवरि किन्नरी डफ झांझ ढोलना ।।
'चत्रभुज प्रभु' फगुवा दियो, राधाजु को भायो कियो"

होरी के पद में भी वाद्यों के नाम पाये जाते हैं—

राग-कान्हरो

वृन्दावन में खेलन होरी ।
× × × ताल पखावज बंसि धुनि बाजत ।
बिच मुरली धुनि सहज सुहाई ।।
ढोल निसान दुंदुभी बाजत, मदनभेरि आनक सहनाई ।।

रुंज मुरज अरु झांझ झलरी, बाजत कर कठताल उपंगा ।।
अरु पिनाक किन्नरी श्रीमंडल, मधुर जंत्र बाजत मुखचंगा ।।
× × ×
गिरिधरलाल की लीला गावै, चतुर्भुजदास चरन रज पावै ।।

होरी के दिनों में गोरी राग में गाये जाने वाले निम्न पद में भी राग का उल्लेख और वाद्यों के नाम प्राप्त होते हैं ।

राग-गोरी

"गोकुल राय कुमार कमलदल लोचना ।
ठाड़े सिंघद्वार कमलदल लोचना ।।
× × ×
रसमसे नंदकिशोर निकसे खेलन फाग ।
मधुर बेनु कर में धरें, गावत गोरी राग ।।
× × ×
बाजत ताल मृदंग आवज डफ मुख चंग ।
मदनभेरि सुरबीन गिडि-गिडि झांझ मृदंग ।।
× × ×
कीरति अविचल रहो जुग जुग इहि ब्रजबास ।
श्रीगिरिधर को जसगान नित करहु 'चत्रभुजदास' ।।

मुरली के पद-गान में, सारंग राग में गाये जाने वाले निम्नलिखित पदों में भी संगीत के पारिभाषिक शब्द मिलते हैं––

(१)

"पिय पें मांगि पियारी मुरली आपु बजाई दिखावति ।
× × ×
गूढ भाव गति लेति ताल जति मंदही मंद सुनावति ।
ठानत हृदै अनागति हरि सम, छिनु-छिनु हँसत हँसावति ।
दास चत्रभुज प्रभु गिरिधर को रीझि कंठ लगावति ।।

(२)

"ऐसेहु मोहि क्यों न सिखावहु" । × × ×
सारंग राग सरस नंदनंदन सजि सप्तक सुर गावहु ।।
तान बंधान सुजान सहज में बहूत अनागत लावहु ।।
श्रुति संगीत करी परिमित ताहु में अतित बढावहु ।।
× × ×
चत्रभुज प्रभु गिरिधर गुन सागर जो इह तुम न बतावहु ।।

चतुर्भुजदास की रचनाओं में मिलने वाले संगीत के पारिभाषिक शब्द––

सप्त-सुर, संगीत, श्रुति, राग, तान, स्वर (सुर) उरप, तिरप, लाग, दाट, सुलप, ध्वनि (धुनि), सप्तक, अवघर, ताल-यति, अनागत, संच-गति गति-भेद, नट, निर्तत, नाचें, रास, हस्तक-भेद, तत् थेई

चतुर्भुजदास के पदों में उपलब्ध वाद्यों के नाम––

(१)	(२)	(३)		(४)
बेनु, मुरलिका	बीना,	ताल,	मृदंग	पखावज, डफ
भेरि, महुवरि	मुरज,	झांझ,	ढोल,	निसान, दुंदुभी
बंसि, मदनभेरि	श्रीमंडल	किन्नरी,	उपंग,	आनक,
पिनाक, सहनाई	सुर-बीन	झालरि,	रुंज,	
मुखचंग, जंत्र		कठताल		
		गिडिगिडि		

चतुर्भुजदास के 'अनुभवैक वर्णन' में, जो * खटऋतु वार्ता से प्रसिद्ध है, उनमें ३६ राग-रागिनियों के नाम प्राप्त होते हैं। किन्तु इन राग-नामों और सम्प्रदाय के

---

* *'खटऋतु वार्ता' में परिख द्वारकादास ने श्री गोकुलनाथजी द्वारा प्रकट होना माना है किन्तु अन्य मतानुसार श्री हरिरायजी द्वारा ग्रंथस्थ होना माना जाता है।*

लिखित-प्रकाशित कीर्तन संग्रहों में चतुर्भुजदास के गाये हुए पदों के राग-नामों में कुछ भिन्नता दिखाई देती है। लिखित-प्रकाशित संग्रहों में से प्राप्त ३६ रागों के नाम निम्न प्रकार हैं:—

१. भैरव, २. रामकली, ३. विभास, ४. ललित, ५. रामग्री, ६. देवगंधार, ७. विलावल, ८. टोडी, ९. सामेरी, १०, आसावरी, ११. धनाश्री, १२. सारंग, १३. बसंत १४. सोरठ, १५. मल्हार, १६. सोरठ मल्हार, १७. नट, १८. नट नारायण, १९. पूर्वी, २०. जेतश्री, २१. माली गौरा, २२. गोरी, २३. मालव, २४. हमीर, २५. ईमन, २६. कल्याण, २७. केदारो, २७. कानरो, २९. अडानो, ३०, रायसो, ३१. विहाग, ३२. विहागरो, ३३. सुहा, ३४ मारु, ३५. काफी, ३६ मालश्री ।

संगीताचार्य भक्त कवि

श्री नंददासजी

अष्टछाप के आठवें संगीताचार्य कविवर नंददासजी का जन्म सं. १५९० (ई. १५३४) में सोरों के निकट रामपुर ग्राम में हुआ था । वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। उनके पिता जीवाराम सोरों-निवासी तुलसीदासजी के पिता आत्माराम के सगे-भाई थे। तुलसीदासजी और नन्ददासजी दोनों के माता पिता बाल्यावस्था में ही गत हो जाने से ये सोरम में अपनी दादी माँ के पास रहते थे। दोनों ने रामानंदी पं. नरहरि से विद्याभ्यास और संस्कृत का उत्तम ज्ञान प्राप्त किया था। कहा जाता है कि सं. १६०६ में तुलसीदासजी और नन्ददासजी (अग्रज-अनुज) काशी में रहकर कथा-कीर्तन द्वारा आजीविका करने लगे ।* दोनों भ्राताओं की बचपन से ही काव्य-रचना और संगीत कला की ओर रुचि होने से काशी में आकर इन विषयों में दोनों पारंगत हो गये थे।

एक दिन नंददास को ज्ञात हुआ कि द्वारिका-यात्रा के लिए एक संघ जाने वाला है। वे यात्रा संघ के साथ हो गये । मार्ग में संघ से मथुरा में नन्ददासजी अलग होकर द्वारिका की ओर अकेले ही चल दिये । रास्ते में मार्ग भूलकर 'सिंहनद' ग्राम में जा पहुँचे। कहा जाता है कि वहाँ श्री गुसाँईजी के एक क्षत्रिय सेवक की रूपवती पत्नी को देख कर ऐसे मोहित हो गये कि प्रतिदिन उसका मुख नहीं देख लेते, तब तक वे जलपान भी नहीं करते थे। इसी कारण वे हमेशा उसके घर के चक्कर लगाने लगे। इस कृत्य से उस स्त्री की बदनामी होने लगी। पीछा छुड़ाने के बहुत प्रयत्न करने पर भी जब उसके परिवार वाले असफल रहे तो अंत में वे सब घर छोड़कर गोकुल में जा कर ठहरे। उनका पीछा करते हुए नंददास भी गोकुल जा पहुँचे। घर वालों ने नन्ददास की यह कहानी गो० श्री विट्ठलनाथजी को सुनायी । श्री गुसाँईजी ने उनको सान्त्वना देकर नंददास को बुलवाया और उपदेश दिया। फलतः नन्ददास का मोह दूर हो गया और उन्होंने आपके शिष्य बनकर अपने हृदय का सम्पूर्ण प्रेम भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में समर्पित कर दिया। उनके जीवन का क्रम ही बदल गया। वे श्री विट्ठलेश्वर के साथ गोवर्धन आये। काव्य-संगीत का ज्ञान होने के कारण उनका मन श्रीजी के

---

* *कोई तुलसीदास को बड़ा भाई और कोई 'गुरुभाई' मानते हैं। हमारे मतानुसार अष्टसखान की वार्ता' के अनुसार नंददासजी को तुलसीदासजी का बड़ा भाई मानने में कोई आपत्ति न होनी चाहिए।*

कीर्तन में विशेष लगता था। फलतः श्री गुसाँईजी ने इन्हें विष्णुदास छीपा के स्थान पर नियत किया, और अष्टछाप की पूर्ति हो गयी । यह घटना सं. १६०७ के आसपास की मानी जाती है ।

सत्संग और सम्प्रदाय के ज्ञानार्थ श्री गुसाँईजी ने नन्ददासजी को प्रारंभ में सूरदास जी के पास रहने की आज्ञा की। सूर ने प्रभुचरण की आज्ञा से इन्हें चंद्रसरोवर में अपने पास छः मास तक रखकर दैन्य एवं वैराग्य स्थापित कर उनके हृदय का विद्यामद निवृत्त किया । तत्पश्चात् काव्य-चित्रों एवं कूट-पदों द्वारा मर्यादा प्रधान राम-भक्ति के स्थान पर उनके हृदय को अलौकिक श्रृंगार-रस-परिपूर्ण श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त किया। माधुर्य भक्ति के उपदेश के लिये श्री सूर ने जिन दृष्टि-कूट पदों की रचना की थी वे बाद में 'साहित्य लहरी' के रूप में संकलित किये गये । तदुपरान्त सूर के सत्संग से सम्प्रदाय का रहस्य एवं काव्य-संगीत की प्रतिभा भी निखर गयी फलतः साहित्य क्षेत्र में श्रृंगार रस एवं अलंकारों से परिपूर्ण अनेक रचनाओं का सृजन हुआ। नन्ददासजी की रचनाओं के बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं; जिनमें 'रास पंचाध्यायी' और 'भँवर गीत' विशेष प्रसिद्ध हैं। श्रीराम और हनुमान विषयक कतिपय पदों की रचना सम्प्रदाय-प्रवेश के पूर्व की हो सकती हैं। नन्ददासजी कृत उपलब्ध पदों की संख्या लगभग ४०० से अधिक हैं। हिन्दी साहित्य में अष्टछाप कवियों में सूर के पश्चात् नंददास का स्थान महत्वपूर्ण माना जाता है, परन्तु इसमें विवाद है।

संगीत-क्षेत्र की दृष्टि से देखा जाए तो नंददासजी ने उस समय के प्रचलित रागों में सैकड़ों पदों की रचना की है; जिनमें बहुत से पदों की बंदिशों के विविध प्रकार प्राचीन ध्रुपदादि प्रबन्धों का गान आज क्वचित् ही कीर्तनगायकों को परंपरानुसार शैली में स्मरण होना संभावित है । नन्ददासजी ने सर्वप्रथम रामकली राग में श्री यमुनाजी का स्तुति-गान किया यह 'वार्ता' से ज्ञात होता है। शरण में आने के पश्चात् राग-विभास में श्री गुसाँईजी की वंदना के भाव के प्रातःस्मरणीय पद गान किये तत्पश्चात् श्रीनवनीतप्रिय जी के सम्मुख सर्वप्रथम निम्नलिखित पदगान किया।

राग-बिलावल--**गोपाल ललन कों मोद भरि जसुमति हुलरावति'**

नंददासजी की वार्ता के प्रसंग २ में निम्न प्रकार का उल्लेख प्राप्त होता है—

"ता पाछे राजभोग करि कें श्री गुसाँईजी श्रीनाथजी द्वार पधारे। नन्ददास को हू संग लिये। उत्थापन के समय आय पहोंचे । सो नन्ददास श्रीगोवर्धननाथजी के दरशन करिकें बहोत प्रसन्न भये। ता समे नन्ददासने यह कीर्तन गायो।

राग-नट– 'सोहत सुरंग दुरंग पाग कुरंग ललना कैसे लोइन लोने"

"पाछे संध्यार्ति के दर्शन खुले तब यह कीर्तन गाये—

राग–गोरी।

१. बन तें सखन संग गायन के पाछें पाछें आवत

२. वनतें आवत गावत गोरी।

"सो या भाँति नन्ददास ने बहोत कीर्तन किये। ता पाछे नन्ददास छ माह पर्यंत सूरदासजी के संग परासोली में रहे"

वार्ता प्रसंग ३ में श्री तुलसीदासजी के पत्र और प्रत्युत्तर का प्रसंग प्राप्त होता है। सारांश में निम्न प्रकार का उल्लेख देखेंगे—

"सो नन्ददास ने तुलसीदास कों पत्र लिख्यो। तामें एक पद यह लिख्यो। सो पद–राग-आसावरी–

"कृष्णनाम जबतें श्रवन सुन्योरी आली,
भूली री भवन हौं तो बावरी भई री ।।

'भरि भरि आवै नैन, चितहूँ न परै चैन,
मुख हू न आवै बैन, तन की दसा कछु और भई री ।।१।।

जेतेक नेम धरम व्रत, किए री मैं बहुविधि,
अंग अंग भई हौं तो श्रवनमई री ।।

'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसी गति,
माधुरी मूरति कैंधो कैसी दई री ।।२।।*

वार्ता प्रसंग ६ का निम्न विधान भी देखिए "नंददास ने सुनी जो अकबर बादशाह के डेरा गोवर्धन में मानसी गंगा पें भये हैं। पातशाह के एक लोंडी हती सो श्री गुसाँईजी की सेवक हती। वा सों नंददास सों बड़ी प्रीति हती। तहाँ नन्ददास आये। वहाँ लोंडी ने एकांत ठौर में रसोई करके भोग धर्यो हो। सो नन्ददास ता समें श्री गोवर्धननाथ जी कों देखे। ता पाछें नन्ददास एक वृक्षन की ओट में ठाडे रह कें यह कीर्तन गायो।" राग-टोडी–

"चित्र सराहत चितवत दुरि मुरि
गोपी बहुत सयानी ।।‡

** यह पद कीर्तन संग्रहों में 'हिलग' के पदों में समाविष्ट किया है। जो शीतकाल में राजभोग के दर्शन में गाया जाता है।*

† परीख द्वारकादास के मतानुसार उस लोंडी के 'रूप मंजरी' होने की संभावना है।

‡ टोडी राग का यह पद आज भी शीतकाल में राजभोग आने पर गाया जाता है।

नन्ददासजी ने राग-ताल बद्ध ध्रुपद-धमार शैली के प्रबन्धों के अतिरिक्त रोला, चौपाई, दोहा एवं छोटे छंदों में बहुत से ग्रन्थों की रचना की है। जैसे—अनेकार्थमंजरी, मानमंजरी, रसमंजरी, भँवरगीत, सुदामाचरित्र, प्रेमबाराखड़ी, बिरहमंजरी, रासपंचाध्यायी ।

नंददास काव्य कला में भाषा की मधुरता एवं शब्दों के कलात्मक संयोजन में सिद्धहस्त थे। उनका शब्द-भंडार विपुल था। वे साहित्य और संगीत के भी पंडित थे। इसलिये "और कवि गठिया नन्ददास जड़िया" की उक्ति प्रचलित हो गयी हैं।

"नन्ददास में दो गुणों की प्रधानता है, 'माधुर्य और प्रसाद'। माधुर्य तो उच्च श्रेणी का है। प्रत्येक पद मानों अंगूर का एक गुच्छा है, जिसमें मीठा रस भरा है। शब्दों में कोमलता भी बहुत है। पंक्तियों में न तो संयुक्ताक्षर हैं और न लंबे-चौड़े समास ही। शब्दों की ध्वनि ही अर्थ का निर्देश करती है।*

नन्ददास के काव्य में पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धांत एव भावों को सफलता पूर्वक व्यक्त किया गया है। उनकी रचनाओं में विशेषता यह है कि उनमें धार्मिकता, साहित्यिकता तथा संगीतात्मकता का त्रिवेणी संगम हुआ है। उनके देहावसान की वार्ता में उल्लेख है कि अकबर बादशाह और बीरबल ने मानसी गंगा पर जब अपने डेरे लगवाये तब वहीं पर नन्ददास से भेंट होने पर अकबर के एक प्रश्न का प्रत्युत्तर गुप्त रखने के कारण नन्ददास और एक सेविका की भी मृत्यु हो‡ गयी। हम उपर्युक्त घटना का अर्थ लगाने में असमर्थ हैं । हमारा मत है कि उनकी मृत्यु स्वाभाविक रूप से हुई थी। देहावसान के समय गो. श्री विट्ठलनाथजी विद्यमान थे। नंददास का अवसान अनुमानतः सं. १६४० के लगभग हुआ था।"

अष्टछाप की पूर्ति नंददास से होने के पूर्व 'अष्टछाप' के भावात्मक स्वरूप की स्थापना की गयी थी; और आठवें सखा विष्णुदास छीपा माने जाते थे। नन्ददासजी जैसे उत्कृष्ट कवि, गायक एव संस्कृतज्ञ के शरण में आने के बाद श्री गुसाँईजी ने विष्णुदास को अन्य सेवा सौंपकर नन्ददासजी को उस स्थान पर नियुक्त किया और अष्टछाप की विधिवत् समारोह के साथ स्थापना की।

नन्ददास का संगीत पक्ष

हमारे मतानुसार नंददासजी भी ६ राग और ३० रागिनियों की मान्यता के पक्ष में थे। इस प्रकार कुल ३६ राग-रागिनियों के नाम पद-संग्रहों में से हमें निम्नप्रकार प्राप्त हुए हैं—

---

* *हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. १६०*

‡ *अष्टछाप परिचय, पृ. ३०,*

१. भैंरव, २. रामकली, ३. विभास, ४. ललित, ५. मालकोंस, ६. देवगंधार, ७. बिलावल, ८. टोडी, ९. आसावरी, १०. धनाश्री, ११. सारंग, १२. वसन्त, १३. पंचम, १४. मल्हार १५. सोरठ-मल्हार १६. नट, १७. पूर्वी, १८. मालवगौरा, १९. गौरी, २०. हमीर, २१. कल्याण, २२ केदारो, २३. कानरो, २४. अडानो, २५. ईमन, २६, बिहाग, २७. बिहागरो, २८. खट, २९. सुघराई, ३०. देसाख, ३१. मारू, ३२. काफी, ३३. जैजैवंती, ३४. नायकी, ३५. स्यामकल्याण, और ३६. बडहंस,

नन्ददासजी की दोहे, छंद, रोला, चौपाई आदि में रचित रचनाएँ भी उत्कृष्ट हैं किन्तु यहाँ उनकी संगीतबद्ध गेय रचनाओं पर ही विचार करना सुसंगत होगा। नन्ददास जी रचित कुछ प्रबन्धों (कीर्तनों) का गायन अन्य गायकों ने अपना लिया था। जैसेः—

१. "चिरैयाँ की चुहचुहानी सुन चकई की बानी' (राग-विभास)

२. "जाकों वेद रटत ब्रह्मा रटत संभु रटत सेस रटत (राग सारंग)

३. "आवरी बाबरी उजरी पाग में मेल के बांध्यो है मंजुला चोय"

* इन उदाहरणों में क्र. १ पद श्रीजी को जगाने के समय सम्प्रदाय में गाया जाता है। क्र. २ माहात्म्य का पद है, जो जयन्ति-उत्सवों पर राजभोग के दर्शन में तथा क्र. ३ शयन समय उष्णकाल में राग-कानरा में गाया जाता है। क्र. ३ का पद कोई शृंगार समय बिलावल राग में गाते हैं। किन्तु इस पद गान में लेखक की परंपरा में प्रत्येक पंक्ति की ताल बदलती रहती है। प्रथम पंक्ति चर्चरी में, दूसरी, सूल ताल में, तीसरी (संचारी) धमार में और चौथी (आभोग) पंक्ति चौताल में गाते हुए सुने हैं; जिनको 'ताल-माला' का नाम भी दिया जाता है।

तदुपरान्त नन्ददास जी द्वारा रचित राग-मालाओं की रचनाओं का प्रभु-सम्मुख किया हुआ गान आज भी भारतीय संगीत कला के उस स्वर्ण-युग का एक विशिष्ठ तत्त्व कहा जायगा। भावात्मक-काव्य और संगीतात्मक रागों के संगम से युक्त 'राग-माला' अष्टछाप के अन्य महानुभावों में ही नहीं किन्तु उस समय के अन्य किसी भी कवि या गायक की रचनाओं में प्राप्त नहीं होती। केवल स्वामी हरिदासजी—रचित एक राग-माला प्राप्त होती है, किन्तु 'राग-माला' (जिसे आजकल कुछ गायक 'राग-सागर' भी कहते हैं) के प्रथम गायक अर्थात् उद्भवकर्ता हरिदासजी हैं या नंददासजी इनका निर्णय करना संभव प्रतीत नहीं होता। नन्ददास जी कृत तीन राग-मालाएँ हमें प्राप्त हुई हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

---

* *ये तीनों पद गायकों के घराने की चीजें बन चुकी हैं। इनका विवरण अन्य प्रकरण में किया जायगा।*

(स्थायी)

सारंग नैनी री काहे को लियो है एतौ मान ।

(अन्तरा)

गौरी* गरव छाँडि मिल लालें, मन क्रम वचन,
यातें होत **कल्यान** ।।१।।

(संचारी)

जिन हठ कर री **नट-नागरसों**, मोहेरी **देव गान**।।०

(आभोग)

मुरलीतान **कान्हरो** गावत, सुन लै री दै कान ।।२।।

संचारी–२

रंग-रंगीली सुघर **नायिका**, तू जिन जियमें **अडान** ।।

आभोग–२

'नंददास' **केदारो** करिकें, यों ही **बिहाइगयो** मान ।।३।।‡

उपर्युक्त पद में १० राग हैं जिनका आरंभ राग– 'सारंग' से होता है अतः सम्प्रदाय में यह 'सारंग की राग-माला' नाम से प्रसिद्ध है। 'तृतीय गृह कीर्तन प्रणाली में माघ शु. ४ को भोग के दर्शन में तथा अषाढ़ शु० १ को संध्याति दर्शन में यह राग-माला गाई जाती है।

(२) राग–माला (ईमन)

स्थायी:– 'ये **मानिनी** मान मेरो कह्यो
काहे कों रुसानी प्यारे **स्याम** संग ।।

अंतरा:– 'सूधें क्यों **हमीर** न चितवेरी-मोतन,
गौरी कान्हर ह्यो तो सों रंग ।।१।।

---

* *पाठांतर–गहेरु, ० भैरोंही देवगंधार (देवगंधार, पाठ का अर्थ देव और गांधर्व हो सकता है)*

‡ *इस राग माला की प्रथम तुक 'चौताल' में, दूसरी तुक की प्रथम पंक्ति 'अर्ध-आड चौताल' में तथा द्वितीय पंक्ति 'धमार' एवं तीसरी तुक को 'त्रिताल' में इस प्रकार ताल बदल कर गाते हुए हमारे पिताजी को तथा बाद में वैष्णव कीर्तनकार विट्ठलदास शाह (जो बम्बई लालबाबा के मंदिर में कीर्तन की सेवा में आया करते थे) तथा गोकलदास वकील एवं कीर्तनिया 'मगनलाल नायक' को भी लगभग ५० साल पूर्व सुना है।*

संचारी–'तू जिन **नट** री नागरसों ए **बड़हँसि** तेरी,
आडन पट तजि दीजै मेरी आली ।।

आभोगः– '**नायकी** क्यों न होत **काफी** के वचन सुनि,
ललित हिये गहि रहो बनमाली ।।२।।

संचारीः–२.'एरी **धनवंती आसावरी** रहे तेरी
पूरिये मनोरथ पिय मन ।।

आभोग–२. कहै नंददास तो सुहाग **देवगान** करत,
यों **बिहाग** इ रात उठि अंक **मालव** न ।।३।।

उपर्युक्त 'रागमाला' क्रमशः यमन, स्याम कल्याण, हमीर, गौरी, कान्हरो, नट, बडहंस, अडाना, नायकी, काफी, ललित, धनाश्री, आसावरी, पूर्वी, देवगंधार, बिहाग और मालव, इस प्रकार १७ रागों में गाई जाती है।

राग-माला की नंददास कृत तीसरी रचना भी प्राप्त हुई है। वह उपर्युक्त राग-माला से मिलती-जुलती होते हुए भी रागों में कुछ भिन्नता होने के कारण यहाँ प्रस्तुत करना उचित समझा गया है। इसे हम स्वतंत्र रागमाला की अपेक्षा पाठान्तर कहना उचित समझते हैं।

(३) स्थायीः– '**ए मन** मान मेरो कह्यो काहै को रुसानी प्यारे
स्यामसों सूधो क्यों न चितवेरी मोतन ।।

अंतराः– '**जेजेहुती** सोंति तेरी तिनहु की जीत होति, **सुवराई** क्यों न करत,
बड़हंसि तेरी, होति, कर विचार **नायका** क्यों होति **नट** जिन

संचारीः– '**आड न** पर दीजैरी मेरी आली **काफी** के बचन सुनि
ललित कहै रस लैये जू कैसेकें रिझैये उनको मन ।।

आभोगः– 'अरी **धनव्है** जू **आसावरि** रहिए तेरे उन आगें **भरोंरी** कैसे दिन ।।

आभोग–२. 'नंददास' **देसाख** कहत वचन सुनि **कान्हर** आय
पाँयन परै करि आभरन उठि अंक **मालव** न ठन ।।

इनमें ईमन, स्याम कल्याण, जैजैवंती, सुघराई, बडहंस, नायकी, नट, अडाना, काफी, ललित, धनाश्री, आसावरी, भैरव, देसाख, कान्हरा और मालव–इस प्रकार सोलह रागों का गान किया जाता है।

नन्ददासजी की रचनाओं में नायिकाओं के अनेक भेद दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु उपर्युक्त तीनों राग-मालाओं में मानिनी-नायिका के भावों को राग-नामों द्वारा

अभिव्यक्त किया गया है । इनमें काव्य-कला और संगीत-कला की उत्कृष्टता के साथ ही दोनों कलाओं की प्राण और शरीर के समान अभिन्नता का संकेत भी प्राप्त होता है। रस-भाव की उपलब्धि के लिये ये दोनों आवश्यक हैं । अन्यथा भावात्मक अभिव्यक्ति की पूर्णता का आस्वाद प्राप्त नहीं होता । इसी कारण पुष्टि-सम्प्रदाय की कीर्तन प्रणाली में भगदलीला युक्त (काव्य) पद गान संगीत-बद्ध ही किया जाता है।

प्राचीन तालों के नामोल्लेख भी नन्ददासजी के पदों में पाये जाते हैं— जैसें * अठताल, ० ध्रुवताल, ‡ चपकताल ।

वार्ता रहस्य के कथनानुसार कहा जा चुका है कि नन्ददासजी सूरदास की संगति में छः माह तक चंद्रसरोवर पर रहे थे। अतः उनके पदों की भाषा, भाव एवं संगीतादि के अनुसरण की झलक नंददास के कतिपय पदों में स्पष्ट दिखाई देती है। उदाहरणार्थ देखिए:—

(१) सूर का पद, राग-आसावरी, ताल -चौताल ।
"माईरी कृष्णनाम जबतें स्रवन सुन्योरी तबतें भूली री भवन
बावरी सी भई री ।। भरि-भरि आवे नैन चित न रहत चैन,
सूधौ नहीं परै बैन, मन की दसा सब और व्है रही री ।।१।।
कौन माता कौन पिता को बहिनी कौन भ्राता, कौन ज्ञान कौन
ध्यान मदन दही री ।। 'सूर' स्याम जब तें परे री मेरी दृष्टि बाम
काम धाम निसि याम कुल-कानि निनही री ।।२।।

इसी प्रकार का इसी राग-ताल में गाये जाने वाला नंददासजी का पद "कृष्ण नाम जबतें' पूर्ण रूप से पृ. १७९ पर लिखा जा चुका है।

(२) सूर का पद, राग-बिहाग-ताल-चौताल अथवा चर्चरी
"दौरि दौरि आवत मोहि मानावति, दाम खरच कुछ मोल लई री ।
गई तौ गई न गई तौ न गई, ऐसी कहा कछु गरज भई री ।।१।।
सुनि राधे कैंधों मान मेरो कह्यो, तो बिनु लालन कछु न सही री ।
'सूरदास' प्रभु हरि लीनों, हसि मुसिक्याय मन निकट गई री ।।२।।

---

* "डफ मृदंग अठताल ('डोल झुलावत सब व्रजसुंदरी' पद में)
० ध्रुव ध्रुवपद ध्रुवताल (अनेकार्थ मंजरी)
‡ नंददास (पद संग्रह)

इसी भाव, राग, तालादि का नंददासजी का पदः—

‘दौरि दौरि आवत मोहि मनावति, दाम खरच कछु मोल लईरी।
अचरा पसारति मोहि खिजावति, तेरे बाबा की कहा चेरी भई री ।।१।।
जा री, जा सखि भवन आपुने, लख बातन की एक कही री ।
‘नंददास’ प्रभु वे क्यों नहीं आवत, उनके पाँयन कहा मेंहदी दई री ।।२।।

(३) सूर का पद, राग–सारंग, ताल चौताल

‘सूर आयो सीस पर छाया आई पाँयन तर,
पंथी सब झुक रहे देख छांह गहेरी ।।

‘धंधी जन धंध छांडि बैठेरी धूपन के लिए,
पसु पंछी जीव जंतु चिरैया चुप रहे री ।।१।।

‘व्रज के सुकुमार लोग दै दै किंवार सोये,
उपवन की ब्यारि तामें पौढे पिय हे प्यारी ।।*

‘सूर’ अलबेलि चल काहैकों डराति है,
माह की मध रात जैसें, जेठ की दुपहरी ।।२।।

इसी राग, ताल, भाषा, भावादि का नंददासजी का पदः—

“सूर आयो माथे पर, छाया आई पाँयन तर,
उतर थके पथिक डगर देखि छाँह गहेरी ।

‘सोये सुकुमार लोग जोरिकें किंवार द्वार,
पवन सीतल गोख मोख भवन भरत लहेरी ।।१।।

‘धंधी जन धंध छाँडि जब तपत धूप डरन,
पसु पंछी जीव-जंतु छिपत तरन सहेरी ।।

‘नन्ददास’ प्रभु ऐसे में गवन न कीजे,
माघ की आधि रात जैसी ये जेठ की दुपहरी।।२।।

साम्प्रदायिक कीर्तन संग्रहों में उपर्युक्त तीनों पदों का क्रमशः हिलग के पद, मान के पद और उष्णकाल दुपहरी के पदों में समावेश किया गया है। नन्ददासजी के भ्रमरगीत में भी सूरदास के भ्रमरगीत की छाया दिखाई देती है। अतः स्पष्ट कहा जा सकता है कि नन्ददास को काव्य रचना और सम्प्रदाय की भावना का ज्ञान सूरदास से ही प्राप्त हुआ था। नंददास बहुत से पदों में सूर के पदों के ज्यों के त्यों वाक्य

---

* *पाठांतर—‘तामें सुख क्यों न लहेरी’।*

उद्धृत किये हुए प्राप्त होते हैं। सूर के शिष्यत्वेन उनके वाक्यादि का उपयोग करने का नन्ददासजी को अधिकार होना स्वाभाविक है। अन्यथा सूरदास ने जिस प्रकार कृष्ण-दास अधिकारी को उनके पदों से प्राप्त अपने पदों की मामूली छाया को देखकर भी टोका था, * उस प्रकार वे नन्ददासजी को भी अवश्य ही टोकते।

जो कीर्तन जिस राग में गाया जाता है उसी राग का नामाविधान उसी काव्य-संगति में पाया जाता है। नन्ददासजी के निम्नलिखित पद में यह विशेषता स्पष्ट दिखाई देती हैः—

"वन तें आवत गावत गौरी ।
हाथ लकुटियाँ गाँयन पाछें, ढोटा जसुमतिकौरी ।।१।।
मुरली अधर धरे नंदनंदन, मानों लगी ठगौरी ।।

× × ×

'नंददास' जिन हरिमुख निरख्यौ, तिनको भाग्य बडौरी ।।२।।
यह पद नित्य-प्रणाली में संध्यार्ति के समय गाया जाता है

नन्ददासजी के पद-गान में संगीत शास्त्र के पारिभाषिक शब्द निम्न प्रकार से प्राप्त होते हैः—

१. संगीत, २. अनाघात, ३. नाद, ४. गान, ५. तान, ६, उरप, ७. अनहत, ८. राग, ९. मान, १०. गति, ११, तिरप, १२. सुलप, १३. निर्तं, १४. नृत्य, १५. नट, १६. तत्थेई,

वाद्यों के नाम इस प्रकार पाये जाते हैंः—

(१) तंतवाद्य

१. बीना (वीणा), २. सुर-बीन, ३. सुर-मंडल

(२) सुषिर—वाद्य—

१. मुरली, २. वेनु, (वेणु) ३. विषाण, ४. बांसुरी, ५. शहनाई,

---

* सूर निर्णय, पृ. १५७ ।

(३) आनद्ध –वाद्यः––

१. मृदंग, २. डफ, ३. आवज, ४. चंग, ५. मुरज, ६. उपंग, ७. अघौटी, ८. पटह, ९. ढोल,

(४) घन––वाद्यः––१.झांझ, २. नाल*

---

* पारिभाषिक शब्द तथा वाद्यों के नाम निम्न लिखित पदों में प्रसिद्ध हैं

(१) 'एरी सखी निकसे मोहनलाल', इस काफी राग की होरी में देखिए:––

"सखि पटह आवज सुरबीन अनाघात गति गाजही"

"सखि ताल-मृदंग उपंग, रूंज मुरज डफ बाजही"

(२) 'निकसि कुंवर खेलन चले' इस होरी में–"सुरमंडल डफ झांझ"

(३) "डोल झूलत" पद में––"बाजत ताल मृदंग अधौरी, कूजन बेनु रसाल"

(४) 'सांवरे प्रीतम संग' इस राग के पद में––"संगीत की स्वामिनो" "राग-रागिनी ततथेई" "उरप तिरप मान अतिही अद्भुत गान"

(५) निर्तत गिरिधरन संग' पद में–"बाजत अनहत मृदंग, ताल बीना गति" सुलप संच उरप तिरप लेत नागरी" "नृत्य भेद"

(६) 'डोल झुलावत' पद में––बाजत बेनु विषान बांसुरी

(७) 'बाजत ताल मृदंग झांझ डफ, सहनाई अरु ढोल"

घोंधी

संगीत के इतिहास में गायक घोंघी का नाम सुप्रसिद्ध है । वह मुसलमान ढाढी था। १० साल की उम्र में गवैयों के संपर्क में आया, राजा मान के समय में गायन वादन के कलावंतों के संग से गायन में तथा मृदंग बजाने में निपुणता प्राप्त की। ३० साल की उम्र होने पर माता पिता के देहांत बाद आग्रा आकर रहने लगा।

महावन में उनकी जाति के लोगों से मिलने कभी-कभी आया करते थे । कुछ कार्यार्थ एक दिन वहाँ से गोकुल में आना हुआ । वहाँ ठकुरानी घाट पर श्री गुंसाईजी (विट्ठलनाथजी) का मिलाप हुआ । आपके संगीत ज्ञान एवं कृष्ण भक्ति के प्रभाव से आकर्षित होकर नाम मंत्र की दीक्षा लेकर आपका सेवक बन गया। धीरे-धीरे भगवद्लीला का अनुभव होने लगा और अपने मधुर कंठ से तन्मय होकर भगवान के लीलात्मक पदों की रचना कर अपने गुरु विट्ठलेश की आज्ञा अनुसार भगवान् को सुनाने लगा । श्री विट्ठलेश्वर प्रसन्न होकर अपने आराध्य श्री नवनीत प्रभु के सन्मुख गान करने की आज्ञा होने पर सबसे प्रथम राग सामंत सारंग में "दुपहरी जनक भई" यह पद का राजभोग समय गान किया। घोंघी के सम्बन्ध में कहा जाता है कि एक बार श्री विट्ठलेश्वर श्रीनाथजी की सेवा में पधारे थे। और नवनीत प्रभु की सेवा में श्री विठ्ठलेश प्रभु के बड़े पुत्र श्री गिरिधरजी थे। उस समय प्रभु सन्मुख घोंघी कीर्तन गान कर रहे थे । इनके गान से प्रसन्न होकर स्वयं नवनीत प्रभु साक्षात् दर्शन देकर अपने श्रीहस्त से ताल देने लगे । श्री गिरिधरजी ने यह देखकर अति प्रसन्न होकर अपने हाथ में पहने हुए सोने के कडे न्योछावर करके घोंघी को दे दिए।

अनुमानत : राजा मानसिंह के दरबारी गायकों की संग से घोंघी ने कलावंत तथा नायक की पदवी प्राप्त की । प्रारंभ में राजा मान के वहाँ रहना संभावित है। मान के शासन पश्चात् उनका आग्रा आकर रहना और अपनी कला द्वारा गुजारा करना संभावित है क्योंकि उनका वतन दिल्ली और आग्रा के बीच किसी गाँव का था और वहाँ उनके माता पिता रहते थे। उनकी उत्तरावस्था में संसार के प्रति विराग आने से उनका मन ईश्वर भक्ति के प्रति हो गया और श्री गुंसाइजी विट्ठलनाथजी संगीत विद्या में पारंगत एवं कलाकारों के प्रदान थे । इतना ही नहीं उनके वहाँ अष्टछाप के आठ महान् भक्त गायक और कविवर हमेशा श्रीजी के गुणगान में तत्पर रहते थे, इत्यादि कारणों से घोंघी श्री गुंसाइजी का

सेवक बनकर, गायक कलावंत तो था ही, किन्तु कवि और भक्त बनकर अष्टछाप की गान परंपरा में स्थान प्राप्त किया ।

पुष्टिमार्गीय कीर्तन प्रणालिकाओं में धोंधी के पद भी कहीं-कहीं पूर्तिकारक दिखाई देते हैं । जैसे वर्षाऋतु के पदों में श्रीजी को अभ्यंग स्नान कराते समय गाये जाने वाला केवल मल्हार राग में धोंधी का ही "ठाड़े रहो अंगना हो पिय जों लों नखसिख देह न भींजे" यह पद ही प्राप्त होता है । धोंधी के पदों की संख्या लगभग ५० के आसपास प्राप्त हो चुकी है। जिनके मुख्यतः राग (१) ललित (२) मालकौंस (३) भैरव (४) देवगंधार (५) सारंग (६) सोरठ (७) काफी (८) नट (९) पूर्वी (१०) कल्याण (११) केदार (१२) अडाना (१३) बिहाग (१४) वसंत (१५) मल्हार (१६) सूहा-सुघराई है। जिनमें झप-ताल, मठ-ताल, चपक ताल, चर्चरी धमार आदि प्राचीन तालों में बंदिशें दिखाई देती है।

इनके कुछ पदों में अन्य छाप भी किसी ने रख दी हो ऐसा भी मालूम होता है। जैसे राग-मालकौंस का सुप्रसिद्ध पद 'आवन कह गये अजहू न आये' इस पद के आभोग में तानसेन की छाप का पाठ भी प्राप्त होता है, जो निम्न प्रकार हैं:—

"धोंधी के प्रभु तुम बहु नायक आये निपट सवारे ।।२।।
"तानसेन के प्रभु तुम बहु नायक, तोऊ मेरे नैनन के तारे ।।२।।

तानसेन के नाम की महत्ता के कारण ऐसा परिवर्तन होना संभवित है ।

(विशेष में देखिये दोसौ बावन वैष्णवन की वार्ता २४३।।)

तानसेन

तानसेन का मूल नाम तन्नामिश्र था। पिता का नाम मकरंद पांडे (ब्राह्मण) था। जन्म संवत् १५७६ में ग्वालियर के पास विहर नाम के गांव में हुआ था। पांच साल की आयु के बाद उनको किसी संगीत निपुण मुस्लिम की सोबत हुई और तानसेन को संगीत सिखाया था। २५२ वैष्णव की वार्ता में निम्न प्रसंग लिखा गया है:

"सो तानसेन सुंदर गावन लाग्यो : पाछें सरस्वती की आराधना की, सरस्वती याको दरसन देकर कह्यो जो कछु मांगि, तब तानसेन ने कह्यो जो मोको राग सिद्ध होइ, तब सरस्वती कहे तथास्तु। पाछे तानसेन गावै तब हिरन उनके निकट दौरि आवै, अैसे सुंदर गावन लाग्यो। सो एक समय दिल्ली गये, पादशाह को गानो सुनायो पादशाह उनको गानो सुनि प्रसन्न भयो सो बहोत द्रव्य दियो। पाछे पादशाह तानसेन सों कहे जो तू हमारे पास रहे। पाछे इनको महिना करि दियो। सो ता दिनते तानसेन पृथ्वीपति के पास रह्यो सो दरबार में जान लाग्यो और गानो सुनावें।

इसके अतिरिक्त यह भी कहा जाता है कि एक दिन स्वामी हरिरायजी यात्रा में जाते हुए भक्त मंडली सहित तानसेन की बगीची के पास से निकले तब दस वर्ष की आयु को बालक तन्नामिश्र की पशु-पक्षियों की नकल की आवाज सुनकर स्वामीजी प्रसन्न हुए और संगीत शिक्षा के योग्य जानकर उनको वृन्दावन ले गये और दस वर्ष तक सीखने के बाद पिता की बीमारी के कारण अपने गांव आये। पश्चात् रीवां के महाराजा रामचंद्र वृंदावन से अपने दरबार में ले गये। एक दिन शहनशाह अकबर का रीवां आना हुआ और तानसेन का संगीत सुनकर मुग्ध होकर अपने साथ दिल्ली ले गये और दरबार के मुख्य गायक के उपरान्त नवरत्नों में तानसेन को स्थान दिया गया।

श्री गुसांईजी का सेवक राजा आशकरण के दरबार में तानसेन गान सुनाने के लिये आया करता था। इन पर मुग्ध हो गया था। तानसेन का वैष्णव होने का प्रसंग वार्ता में निम्न प्रकार लिखा है—

"वार्ता प्रसंग-१"

"एक समैं उष्णकाल के दिन तानसेन, श्री गुसांईजी जो गोविंदस्वामी आदि भगवदीय के पास गोविंदघाट पै बिराजे हते ता समें, गायवें कों आए। तब तानसेन

ने एक पद गायो । सो पद–'तेरे मन में किलो एक गुनरे जो तो पैं आवे तो प्रकास कररे । सप्त सुर तीन ग्राम इसइस मूर्छना जोइ सुर आवे तोपे सोइ सुर भररे । हिरन बुलाये, पगन पराये, मेहा बरसाये तोको सरस्वती बररे । कहे मियां 'तानसेन', सुनेरे गनीजन, सब गुनियन के पायन पररे ।'

सो यह पद सुनि कै श्री गुसांइजी तानसेन को पात्साह को गवैया जानि रुपया ५००) पांच सौ दिये । ता पर एक कोडी और दिये । तब तानसेन पूछ्यो, जो–महाराज ! यह कोडी काहेकों दीनी ? तब श्रीगुसांइजी आज्ञा किये, जो–तानसेन-जी ! तुम पात्साह के गवैया हो तातें तुम कों रुपैया पांच सौ हम दिये हैं। और यह कोडी तो तुम्हारी वानी सुनि कै दीनी है । तब तानसेन ने श्रीगुसांइजी सों बिनती कीनी, जो–महाराज ! हम कों आप कछू अधकी सुनाइए तब हम जानें, जो–आपने हमारी कीमत करी सो उचित है । नांतरू हम कसें जाने ? तब श्री गुसांइजी आप मुसिक्याइ कै गोविंदस्वामी की ओर देखें। पाछें गोविंदस्वामी सों आज्ञा कीनी,, जो–गोविंददास ! कछू कीर्तन गाउ । तब गोविंदस्वामी ने सारंग राग में एक पद गायो । सो पद––

राग सारंग

श्रीवल्लभनंदन रूप अनूप स्वरूप कह्यो नही जाई ।
प्रगट परमानंद गोकुल बसत है सब जगत के सुखदाई ।
भक्ति मुक्ति देत सबन को कृपा प्रेम बरखत अधिकाई ।
सुखमय सुखरूप सुखद एक रसना कहांलो बरनौं 'गोविंद' बलि बलि जाई ।

ता पाछें दूसरो पद गायो––

राग सारंग

सुनिरी सखी दुपहरी की बिरियां बठि झरोखन पोवति हार।
ओंचका आय गये नंदनंदन मोतन कांकरी चितये डार ।
हो सकुच मुख मोरि ठाढ़ी भई गुरुजन लाज विचार ।
'गोविंद' प्रभु पिय रसिक सिरोमनि सेन बताई भुजा पसार ।

सो यह पद सुनत ही तानसेन चकित होंइ रहे । पाछें दोऊ हाथ जोरि श्रीगुसांईजी सों बिनती किये, जो–महाराज ! इनके आगे मेरो गानो एसो है, जंसे मखमल के आगे टाट होत हैं । ता पाछें तानसेन गोविंदस्वामी के निकट जांइ बिनती किये, जो–तुम मोकों कृपा करि कछू गान सिखाओ । तब गोविंदस्वामी कह्यो, जो–हम श्रीगुसांईजी के सेवक बिना काहू सों संभाषन हू करत नाही । तब तानसेन श्रीगुसांईजी सों बिनती किए । तब श्रीगुसांईजी तानसेन को नाम सुनाए । पाछें तानसेन ने श्रीगुसांईजी कों एक सहस्त्र मुद्रा भेंट करी। और बिनती कीनी, जो–

महाराज! आप गोविंदस्वामी सों आज्ञा करें, जो–मो गान विद्या सिखाये। तब श्रीगुसांईजी गोविन्दस्वामी सों आज्ञा किये, जो–गोविंददास! इनकों कीर्तन सिखइयो। तब तानसेन कछूक दिन गोविंदस्वामी के पास रहे। मार्ग की प्रणाली अनुसार कीर्तन सीखे। ता पाछें श्रीगुसांईजी की आज्ञा पाइ श्रीनाथजी के सन्मुख कीर्तन करन लागे।

तानसेन संबंधी अनेक किंवदंतियां प्रसिद्ध हो चुकी हैं। तानसेन की उत्तरावस्था में उनका वैष्णव होना संभावित है। उनकी पद रचना में अष्टछाप की परम्परा की झलक दिखाई देती है। अष्टछाप के गाये हुए रागों में ही आपकी रचनायें प्राप्त होती हैं। दरबारी कानड़ा तथा कुछ रागों को तानसेन का आविष्कार माना जाता है किन्तु सम्प्रदाय में जो सैकड़ों पद गाये जाते हैं, उनका हस्तलिखित कीर्तन संग्रह में उल्लेख प्राप्त नहीं होता। उनके पद अधिक्तर नित्य-सेवा प्रणाली के दृष्टिगत होते हैं। श्रृंगार रस से झलकते हुए ये पद आज भी शीतकाल, उष्णकाल और चतुर्मास में गाये जाते हैं।

कहा जाता है कि तानसेन ने १००० पद की रचना की है किन्तु "संगीत सम्राट तानसेन" पुस्तिका में लगभग ३०० पद प्रकाशित हुअे हैं। ऐसी मान्यता है कि तानसेन के कुछ पद उनके नाम पर चढ़ गये जिनमें अन्य की छाप भी दिखाई देती है जैसे कि—

(१) रितु अंग अंग रंग रानी (हरिनारायण)
(२) मेरो पिय रसिया सुनरी सखी (कृष्णजीवन)
(३) हों पनिया न जैहों (प्रभु कल्याण)
(४) बरसि उघर गयो मेह-(सूरदास)
(५) अबही डारि दैरे इंडुरियां (मदनमोहन पिय)
(६) आवन कह गये (धोंधी)

राजा आसकरण

अष्टछाप की परम्परा में श्री विट्ठलेश्वर के सेवक राजा आसकरण का भी महत्वपूर्ण सहयोग है । इसी परम्परा के अनुसार राग, ताल और बंदिशों में आपने १२५ पदों से अधिक संख्या में पद-गान किया हुआ दृष्टिगत होता है । इनका कीर्तन प्रणाली को समृद्ध बनाने में योग्य स्थान दिया गया है ।

२५२ वैष्णव की १२३वीं वार्ता में आपके संबंध में निम्न उल्लेख प्राप्त होता है—

"सो आसकरन कों प्रथम राग पर बोहोत आसक्ति हुती । सो देस देस के कलामंत गवैया आसकरन के पास आवते । सो आसकरन सब कौ समाधान करते । जहां लों रहते तहां तांई सीधो सामान पहोंचावते । पाछें जब चलते तब बिदा हू आछी करते । सो दोइसौ-चारसौ गवैया सदा आसकरन के पास गाइवे कों रहते ।

सो एक दिन तानसेन ने आसकरन की बड़ाई सुनी । यह विचार कै तानसेन आसकरन के उहां गए । सो मध्याह्न समय राजा अपनी कचहरी में बैठो है । दसबास भले भले गवैया गावत है, सारंग के पद। ज्येष्ठ के दिन हैं । सो आसकरण तानसेन कों देखि के बोहोत प्रसन्न भयो । कह्यो, तानसेन! तुम भले समय आये । कछु सारंग के पद गावो । तब गोविंदस्वामी को "कुंवर बैठे प्यारी के संग अंग-अंग भरे रंग बलि बलि बलि त्रिभंगी जुवतिन-सुखदाई ।" यह पद गायो तब आसकरन ने कहा जो—आज तांई मैंने एसो पद नहीं सुन्यो ।

पश्चात राजा ने गोविंदस्वामी को मिलने की इच्छा प्रगट की किन्तु श्री गुसांईजी के सेवक भये बिना वे किसी को मिलते नहीं हैं । यह जानकर तानसेन के साथ गोकुल जाकर श्रीगुसांईजी के सेवक हुए । श्रीगुसांईजी की आज्ञा से गोविंदस्वामी ने राजा को प्रातःकाल तें सेन पर्यंत की वर्ष भर की कीर्तन सेवा को क्रम सिखायो । राजा को काव्य और संगीत की अच्छी जानकारी होने से गोविंदस्वामी की परंपरा अनुसार कीर्तन की सीधे रचना कर प्रभु सन्मुख गान करने लगे । कहा जाता है कि आपको भगवत लीला के दर्शन होने लगे और तदनुसार अष्टछाप की परंपरानुसार कीर्तन गान करते हुए प्रभु को रिझाने लगे। नरवरगढ़ नरेश होते हुए भी राजपाट छोड़कर तानसेन के संपर्क से उच्चकोटि के कवि, संगीतज्ञ एवं महानुभाव भगवदीय की गणना प्राप्त की ।

वर्षभर की कीर्तन सेवा में आज भी आपके पद गाये जाते हैं जो कीर्तन संग्रहों में सुप्रसिद्ध हैं, राग और ताल अष्टछाप की परंपरा की मर्यादा में ही होने से यहां अलग सूची दी गयी नहीं है ।

गंगाबाई

गंगाबाई का जन्म एक क्षत्री के घर गोकुल के पास महावन में हुआ था । उनकी माता श्री गुसांईजी की अनन्य कृपापात्र थी । श्री गुसांईजी की कृपा से उनके वहां गंगाबाई का जन्म हुआ । कुछ समय बाद बड़ी होने पर उन्होंने श्रीगुसांईजी से दीक्षा प्राप्त की और सम्प्रदाय की प्रणाली अनुसार भगवद् स्वरूप पधराय कर सेवा करने लगीं। सेवा से निवृत्त होकर हमेशा गोकुल जाया करती थीं । वहां श्रीगुसांईजी से श्रीमद् भागवत-सुबोधिनीजी कथा इत्यादि श्रवण करती थीं और तत्काल उसी भावानुकूल पद रचना करके श्रीगुसांईजी को सुनाती थीं । ये शीघ्र कवयित्री थीं । यही नहीं संगीत का ज्ञान भी उच्च प्रकार का था । उनकी भक्ति-भावना से स्वयं श्री गोवर्धननाथजी प्रसन्न होकर सानुभावता यानि उसकी साथ प्रत्यक्ष बातचीत करते थे । लीला के दर्शनों की दिव्य झांकी का भी सौभाग्य उनको प्राप्त हुआ था । तदनुसार वे विविध प्रकार की पद-रचना करके राग-रागिनी में गान किया करती थीं और श्रीनाथजी को सुनाया करती थीं । उनकी पद-रचना में अपने नाम के स्थान पर उन्होंने अपने गुरु और गोवर्धनधरन की छाप स्थापित की है । उनकी गुरु और गोविंद में समान भावना थी । इस प्रकार उनके प्रत्येक पद में "श्रीविट्ठल गिरिधरन" की छाप दिखाई देती है ।

श्रीगुसांईजी की उत्तरावस्था से लेकर श्री हरिरायजी के समय तक वे उपस्थित थीं । जीवन भर वे सम्प्रदाय के विविध उत्सव, बधाई, त्यौहारों के कीर्तनों की रचना कर दिव्य अनुभव करती रहीं । अष्टछाप के पश्चात कीर्तन साहित्य को समृद्ध बनाने में उनका योगदान कम नहीं है । अष्टछाप की परम्परा के रागों में ही उन्होंने अपनी रचना की है । श्री हरिरायजी के समय में जब कीर्तन प्रणाली नियत हुई तब अनेक उत्सव, बधाई और नित्यपद, इत्यादि में इनके पदों की पूर्ति की हुई दिखाई देती है ।

विधर्मियों के उपद्रव के कारण ब्रज से श्री गोवर्धननाथजी जब मेवाड़ पधारे उस समय गंगाबाई साथ में ही रहीं। इस प्रकार १०५ वर्ष आयु तक अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सेवा स्मरण कीर्तन ध्यान करती हुई भगवद्चरणारविंद में प्राप्त हुईं ।

पदगानमें वाद्यों के नाम

अष्टछापीय परम्परा के पद गान में वाद्यों के जो नाम पाये जाते हैं उसके उदाहरणरूप कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं:–

"बाजत ताल मृदंग, बांसुरी कीन्नर सुर कौतलरी" (कुंभनदासजी)
"ताल मुरज रवाब बीना कीन्नरी रस सार" (सूरदासजी)
"झांझ झालरी कीन्नरी रंग भीनी ग्वालनी" (सूरदासजी)
"मुरलिया बाजत है बहुबान तीनग्राम इकइस मूर्छना उनयासी कोटीकाम ।।२।।
"सूरस्याम के अधरन राजत सबही अंग निधान ।।३।।" (सूरदासजी)
"हाथ त्रिशूल दूज कर डमरू, सींगी नाद बजावे" (सूरदासजी)
"बाजत बीन मृदंग शंख ध्वनि घसि अरगजा अंग चढाई" (सूरदासजी)
"बाजत पटह निशान अहो हरि होरी है ।" (सूरदासजी)
"सुरमंडल पिनाक महुवरि जलतरंग मनमोहे" (कृष्णदासजी)
"मदनभेरी रायगिडगिडी सहनाइ सुरमोहे" (कृष्णदासजी)
"बाजत ताल मृदंग झांझ डफ नूर भेरि सहनाई" (कृष्णदासजी)
"बाजत ताल मृदंग अधोटी आवज डफ सुरबीन उपंग" (कृष्णदासजी)
"तहां धूरें निसान ते नगारे की ध्वनि रह्यो घोख सब गाज" (कृष्णदासजी)
"झांझ झनक खंजरि बाजे भई झालरकी झनकारे" (कृष्णदासजी)
"बाजत बीना मृदंग बांसुरी अंग चंग भेरी डफ, झांझ झालरि, मंजिर" (कृष्णदासजी)
"दूज हु बाजे बाजन लागे दुंदुभी धौंसा गाजे,
रुज मुरज आवज सारंगी यंत्र किन्नरीबाजे" (परमानंददासजी)
"ललना बाजत ताल मृदंग बाजत कर कठताल" (गोविंदस्वामी)
"बाजत ताल मृदंग, झांझ,डफ, सहनाई अरु ढोल" (नंददासजी)
"डिमडिम दुंदुभी झालरी आवज वर मुख चंगा" (चत्रभुजदासजी)
"बाजे बाजे मंदिलरा अनुपम गति माई" (व्रजमति)
"सुरबीना श्रीमंडल अमृत कुंडली, आवज उपंग चंग बाजे मृदंग ताल" (गनहरिया)

वाद्यों के चार प्रकार

(१) ततवाद्य:–सूरवीणा (बीना), बीन, कीन्नरी, सारंगी, सुरमंडल, रवाब, पिनाक, अमृत-कुण्डली, श्रीमंडल, यंत्र, सहतार ।

(२) सुषिर वाद्य:–बांसुरी, मुरली, सहनाई, महुवरि, मुख चंग, मुहचंग, शंख, भेरि ।

(३) आनद्य वाद्य:–मृदंग, पखावज, मंदिलरश, मुरज, रुंज, आवज, दुंदुभी, निसान, पटह, ढोल, डमरु, डिमडिमी, चंग, उपंग, नगारे ।

(४) घनवाद्य:–ताल, झांझ, कठताल, आलरि, मंजीर, मंजीरा, खंजरी, जलतरंग, घंट, रायगिडगीडी ।